ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

जीवन वृत्तान्त

श्री गुरु हरिगोबिन्द साहब जी

लेखक : स. जसबीर सिंघ

क्रांतिकारी गुरु नानक देव चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़

Website : www.sikhworld.info

नोट: यहां दी गई सारी जानकारी लेखक के अपने निजी विचार हैं। यह जरूरी नहीं कि सभी लेखक के विचारों से सहमत हों।

श्री गुरू हरिगोबिन्द साहब जी

श्री गुरू हरगोविन्द जी का प्रकाश श्री गुरू अर्जुन देव जी के गृह माता गंगा जी के उदर से संवत १६५२ की २१ आषाढ़ शुक्ल पक्ष में तदानुसार १४ जून सन् १५६५ ईस्वी को जिला अमृतसर के बढ़ाली गांव में हुआ।

वाल्यकाल से ही श्री हरिगोविन्द जी बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी थे। श्री गुरू अर्जुन देव जी के यहां लम्बी अवधि के पश्चात इकलौते पुत्रा के रूप में होने के कारण उन्हें माता पिताका अथाह स्नेह मिला और इस स्नेह में मिले उच्च कोटि के संस्कार तथा भक्तिभाव से पूर्ण सात्विक वातावरण। आप के लालन-पालन में बाबा बुड्डा जी तथा भाई गुरदास जी जैसी महान विभूतियों का विशेष योगदान रहा। जिससे आयु के बढ़ने के साथ उन्हें स्वतः ही विवेकशीलता, माधुर्य प्रभु भक्ति एवं सहिष्णुता के सद्गुण भी प्राप्त होते चले गए।

जब आप सात वर्ष के हुए तो आपको साक्षर करने के लिए बाबा बुड्डा जी तथा भाई गुरदास जी की नियुक्ति की गई। इसके साथ ही आपको शस्त्रा विद्या सिखाने के लिए भाई जेठा जी की नियुक्ति की गई। आपको घुड़सवार बन गए। नेज़ाबाजी, बन्दूक आदि शस्त्रों को चलाने में भी आपने शीघ्र ही प्रवीणता प्राप्त कर ली।

आप का कद बुलन्द, अति सुन्दर, चौड़ी छाती, हाथी की सूंड जैसे लम्बे बाजू माथा स्कन्ध भाग तथा पैरों की महराब ऊंचे, दांत चमकीले, रंग गदमी, नेत्रा हिरणों जैसे, बलवान सुंगठित शरीर आत्मबल एवं मानसिक बल में प्रवीण इत्यादि गुण प्रकृति से उपहार स्वरूप प्राप्त हुए थे।

अरजनु काइआ पलटि कै मूरति हरिगोबिन्द सवारी

शान्ति के पुंज, वाणी के बोहिश पंचम पातशाह गुरू अर्जुन देव जी को ३० मई, सन १६०६ ईस्वी को लाहौर नगर में शेख अहमद सरहंदी व शेख फरीद बुखारी द्वारा षड्यन्त्रा रचकर शहरीद कर दिया गया। गुरूपिता श्री गुरू अर्जुन देव जी ने लाहौर जाने से पूर्व बेटे हरिगोविन्द को आदेश दिया - बच्चा अब शस्त्रा धारण करने हैं और तब तक अडिग रहना है जब तक ज़ालिम जुल्म करना न छोड़ दे।

श्री गुरू अर्जुन देव जी की शहीदी के पश्चात् गुरू पिता के आदेश अनुसार गुरू गद्दी का उत्तरदायित्व श्री हरिगोविन्द जी ने संभाल लिया। इस बात को भाई गुरदास जीने स्पष्ट किया कि 'केवल काइआ ही बदली है क्योंकि ज्योति वही रही - गुरू अर्जुन देव ही गुरू हरिगोविन्द रूप हो गए हैं। गुरू घर में गुरमति सिद्धान्त अनुसार सदैव 'गुर शब्द' को ही प्राथमिकता प्राप्त रही है काया अथवा शरीर को नहीं। शरीर की पूजा वर्जित है केवल पुजा दिव्य ज्योति की ही की जाती है। गुरवाणी का पावन आदेश है -

जोति ओहा जुगति साइ, सहि काइआ फेरि पलटीऐ।

भाई गुरदास जी ने इसी सिद्धान्त को अपनी रचनाओं द्वारा पुनः स्पष्ट किया -

पंजि पिआले पंजि पीर छटमु पीरु बैठा गुरू भारी।
अरजनु काइआ पलटि कै मूरति हरि गोबिन्द सवारी।
दल भंजन गुर सूरमा वह जोधा बहू परोपकारी।

श्री गुरू हरिगोविन्द जीने अपने पिता जी के आदेश का अनुसरण किया और समय की नज़ाकत को पहचानते हुए ऐसी शक्तिशाली सेना के सृजन का निश्चय किया जो प्रत्येक प्रकार की चुनौतियों का सामना करने का साहस रखे। उन्होंने लक्ष्य निर्धारित किया कि हमारा सैनिक बल अनाथों, गरीबों, असहाय की रक्षा के लिए वचनबद्ध होगा और इसके विपरीत अत्याचारियों, दुष्टों का दमन करेगा।

पिता श्री गुरू अर्जुन देव जी की शहीदी के पश्चात् जब आपको बाबा बुड्डा जी विधिवत् तिलक लगाकर गुरिआई गद्दी सौंप चुके तो आपने उनसे अनुरोध किया और कहा - बाबा जी ! जैसा कि आप जानते ही हैं, पिता जी का आशय था कि अब समय आ गया है भक्ति के साथ शक्ति का सुमेल होना चाहिए। अतः आप मुझे शस्त्रा धारण करवायें। इस पर बाबा बुड्डा जी ने उन्हें क्रमशः कृपाने धारण करवाई पहली दांयी तरफ भक्ति की और दूसरी बांयी तरफ शक्ति की। इसके साथ उन्होंने आशीष दी कि आप द्वारा गुरू नानक देव के दर घर में मीरी व पीरी का सदैव सुमेल बना रहेगा। यह वचन सुनकर सारी संगत जय-जयकार कर उठी।

मीरी व पीरी की दो कृपाणें धारण करने के पश्चात् श्री गुरू हरिगोविन्द जी ने सभी प्रकार की फकीरी परम्पराएं त्याग दी और सैनिक वेशभूषा धारण करके एक विशेष तख्त पर विराजमान होकर दरबार सजाना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने अपने सभी दूर-दराज के अनुयायियों को विशेष हुक्मनामे

भेजे कि वह आगामी समय में दशमंश भेंट करते समय विशेष ध्यान रखें जब भी कोई सिख दर्शनों को आये तो वह अच्छे अच्छे अस्त्रा शस्त्रा अथवा घोड़े लाये, भाव किसी न किसी प्रकार का सेना से सम्बन्धित रण सामग्री ही लाये, जो आदेश अनुसार आचरण करेगा उस पर गुरूदेव की अति कृपादृष्टि होगी।

श्री गुरू अंगद देव जी ने सिक्खों में मल्ल युद्ध की परम्परा के लिए अखाड़े पहले से ही स्थापित कर दिये थे। अब श्री गुरू हरि गोविन्द साहब जी ने आदेश दिया कि उन अखाड़ों में मल्ल विद्या के साथ साथ अस्त्रा व शस्त्रा विद्या भी सिखाई जाएगी।

उन दिनों प्राय लोग घोड़ों पर ही यात्राा किया करते थे। श्रद्धालुओं ने अस्त्राों-शस्त्राों के साथ साथ गुरूदेव को घोड़े भी भेंट करने आरम्भ कर दिये। इस प्रकार कुछ ही समय में गुरूदेव के पास विशाल सेना तैयार हो गई।

अकाल तख्त की सृजना तथा दिनचर्या

श्री गुरू हरिगोविन्द जी ने श्री गुरू नानक देव जी का छठा उत्तराधिकारी बनने के पश्चात् कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लेकर दिनचर्या में भारी फेरबदल कर दिये। आप जी सूर्य उदय होने से एक पहर पूर्व अमृतबेला में बिस्तर त्याग देते, शौच स्नान से निवृत होकर पदम आसन में सुरति एकाग्र कर चिन्तन-मनन में लीन हो जाते तद्पश्चात् हरि मन्दिर में निजी आसन पर विराजमान होकर आसा की बार का कीर्तन श्रवण करते, कीर्तन की समाप्ति के तुरन्त बाद में स्वयं संगतों को सम्बोधन कर आध्यात्मिक प्राप्तियों के लिए प्रवचन करते, दरबार समाप्ति के पश्चात् नाश्ता और कुछ समय के लिए विश्राम, विश्राम के पश्चात् सभी योद्धा श्री दरबार साहब की दर्शनी ड्योढ़ी के बाहर खुले मैदान में मल्ल युद्ध के लिए एकत्रा हो जाते। गुरूदेव जी स्वयं इस आयोजन में भाग लेते जब मल्ल युद्ध समाप्त होता तो शस्त्रा विद्या के प्रदर्शन होते। इसी बीच आपने अनुभव किया कि एक ऊंचा मंच होना चाहिए, जहां वह विराज कर समस्त दृश्य सहज ही देख सकें और प्रतियोगियों को प्रोत्साहित कर सके। इस प्रकार सभी जनसमूह को अनुशासित रखने के लिए समय समय आदेश जारी कर सके। अगले दिन ही अपने दरबार की समाप्ति के पश्चात् मल्ल अखाड़े में आते ही घोषणा कर दी कि यहां एक तख्त का निर्माण किया जाए जो साधरणतः ऊंचा हो जिस पर बैठकर हम अपने अनुयायियों को निर्देश दे सके। आदेश होते ही भाई गुरदास जी व बाबा बुड्ढा जी ने गुरूदेव की इच्छा को समझा और एक मंच उन की कल्पना के अनुरूप तैयार करवा दिया, जिसका नाम आप जीने अकाल तख्त रखा।

आपजी इस ऊंचे चबूतरे पर विराजमान होकर अपने योद्धाओं के करतब देखते और उनको प्रोत्साहित करने के लिए पुरस्कार वितरण करते। आप जी ने युवकों के हृदयमें वीर रस उत्पन्न करने के लिए भट्ट कवियों को आमन्त्रित किया। इस में प्रमुख अब्दुल्ला व नत्थामल जी थे, यह लोग वीर रस की कवि रचनाएं अपने वाद्यों से जब गायन करते तो युवकों की भुजाएं थिरकने लगती तथा उनके हाथ बरबस मूंछों पर चले जाते, वह मूछों को इस कदर ताव देते कि वे अभी रण भूमिमें प्रस्थान के लिए तैयार खड़े हैं। अनेकों युवकों ने गुरूदेव की समक्ष स्वयं को समर्पित कर दिया और कहा - हमें वेतन नहीं केवल युद्ध सामग्री तथा जीवन निर्वाह की वस्तुएं ही चाहिए जिस के सहारे हम आप के एक संकेत पर मर मिटने को तत्पर रहेंगे।

गुरूदेव की सैन्य शक्ति का आभास होते ही स्थानीय लोग उन से अपने घरेलू झगड़ों का समाधान करवाने चले आते थे क्योंकि उनको यह विश्वास दृढ़ हो गया कि गुरू दरबार में पक्षपात नहीं किया जाता। गुरूदेव भी सत्य को आधार मानकर निर्णय देते और प्रतिद्वंद्वी पक्ष को भी सन्तुष्ट करने का पूर्ण प्रयास करते। इस प्रकार आप की कीर्ति फैलती चली गई। आपके न्याय विधान को देखकर बहुत से श्रद्धालु आपको सच्चा पातशाह कहने लग गए।

जल्दी आपने अनुभव किया कि सैन्यशक्ति को सुरक्षा की आवश्यकता है और उन के प्रशिक्षण व गतिविधियां के लिए अलग से स्थान होना चाहिए क्योंकि साधारण श्रद्धालु और एक सिपाही के अनुशासन में अन्तर रहता है। घोड़ों की संख्या बढ़ने से अस्तबल भी विशाल चाहिए थे। अतः आपने एक किले के निर्माण का आदेश दिया और उस दुर्ग का नाम लोहगढ़ रखा। जैसे जैसे आप के पास योद्धाओं की संख्या बढ़ती गई, आप ने उन्हें पांच भागों में विभाजित कर दिया। प्रत्येक सैन्य टुकड़ी को उस का अलग से कार्य व गतिविधि का प्रशिक्षण होने लगा। इन सैनिकों ने एक ध्वज की आवश्यकता बताई, इस पर गुरूदेव जी ने मीरी का ध्वज अलग से तैयार करके अकाल तख्त के सम्मुख पीरी के ध्वज के साथ लहरा दिया किन्तु उसका कद पीरी के ध्वज से कम रखा और कहा - मीरी सदैव पीरी के नीचे अनुशासन में रहेगी।

श्री गुरू हरिगोविन्द जी शिकार खेलने का बहुत चाहत रखते थे। आपका मानना था कि शिकार खेलना सबसे अच्छा सैन्य प्रशिक्षण है। आप प्रायः समय मिलते ही शिकार खेलने चले जाते जहां अपने योद्धाओं को प्रशिक्षित करते। एक दिन आप को मार्ग में एक वैरागी साधु मिल गया। जैसे ही उसे मालूम हुआ, शिकार खेलने वालों का सरदार गुरू नानक देव जी का उत्तराधिकारी है तो उसने -------- - - - - - - -

चन्दूशाह की चिन्ता

श्री गुरू हरिगोविन्द जी के बढ़ते हुए तेज-प्रताप की चर्चा जब उनके चचेरे भाई पृथ्वीचन्द के बेटे मेहरबान तक पहुंची तो वह पुनः ईर्ष्या की आग में जलने लगा। उसने यह सूचना दीवान चन्दू शाह तक पहुंचाई। इस पर दीवान चन्दू चिन्तातुर हो उठा। उसे शक हो गया कि कहीं अर्जुन देव का बेटा हरिगोविन्द अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध मुझ से लेने की तैयारी तो नहीं कर रहा। क्योंकि वह जानता था कि षड्यन्त्राकारियों ने उसे खूब बदनाम किया है। जब कि उसकी अर्जुन देव जी की हत्या में कोई भी भूमिका नहीं थी, केवल उसे तो मूर्ख बनाकर एक साधन के रूप में प्रयोग किया गया था। किन्तु अब किया भी क्या जा सकता था क्योंकि 'बद से बदनाम' बुरा होता है।

इस गम्भीर विषय को लेकर चन्दू ने अपनी पत्नी से परामर्श किया। उसने कहा – हमें एक दूत भेजकर अपना पक्ष स्पष्ट करना चाहिए और पश्चात्ताप स्वरूप उन्हें फिर से अपनी लड़की का रिश्ता भेजना चाहिए ताकि यह मनमुटाव और दोनों परिवारों में पड़ा हुआ भ्रम कि गुरूदेव की हत्या में उनका हाथ है, सदैव के लिए समाप्त हो जाए।

जब विशेष दूत चन्दू शाह का सन्देश लेकर गुरूदेव के पास पहुंचा तो उन्होंने रिश्ता स्वीकार करने से साफ इन्कार कर दिया। इस उत्तर से चन्दू आशंकित हो उठा और गुरूदेव जी की बढ़ती हुई शक्ति उसे अपने लिए खतरा अनुभव होने लगी। उसने युक्ति से काम लेने के विचार से लाहौर के सुबेदार (राज्यपाल) को पत्रा भिजवाया कि वह (गुरू) हरिगोविन्द की गतिविधियों की पूरी जानकारी बादशाह जहांगीर को भेजे जिससे यह प्रमाणित किया जा सके कि गुरू की तरफ से बगावत का भय बन गया है।

लाहौर के राज्यपाल कुलीज खान ने ऐसा ही किया। उसने गुरू उपमा को बढ़ा चढ़ा कर एक खतरे के आभास के रूप में बादशाह के समक्ष प्रस्तुत किया। बादशाह जहांगीर का चिन्तातुर होना स्वाभाविक था। उसने तुरन्त इस प्रश्न पर विचारविमर्श के लिए अपनी सलाहकार समिति बुलाई। जिस में उसके उपमंत्री वज़ीर खान भी थे। यह वजीर खान गुरूघर पर अपार श्रद्धा रखते थे क्योंकि सांई मीयां मीर जी द्वारा मार्गदर्शन पर उनका जलोघर का रोग गुरू जी की शरण में आने पर दूर हो गया था। वह श्री गुरू अर्जुन देव द्वारा रचित सुखमनी साहब की वाणी नित्य पठन किया करते थे। उन्होंने बादशाह को धैर्य रखने को कहा और उसे सांत्वना दी। इस पर सम्राट ने पूछा मुझे क्या करना चाहिए ? सूझवान वज़ीरचन्द ने कहा – मैं उनको आपके पास बुला कर लाता हूं, जब साक्षात्कार होगा तो अपने आप एक दूसरे के प्रति भ्रम दूर हो जायेगा। सम्राट को यह सुझाव बहुत पसन्द आया। उसने वजीर खान तथा किन्वा बेग के हाथों श्री गुरू हरिगोविन्द जी को दिल्ली आने का निमन्त्राण भेजा।

जब वज़ीरचन्द व किन्वा बेग सम्राट का निमन्त्राण लेकर अमृतसर पहुंचे तो गुरूदेव ने उनका हार्दिक स्वागत किया, किन्तु निमन्त्राण के प्रश्न पर माता गंगा जी ने आपत्ति की और इस गम्भीर विषय को लेकर प्रमुख सिक्खों की सभा बुलाई गई। सभा में वज़ीर खान ने माता जी को आश्वासन दिया कि सम्राट की नीयत पर संशय करना व्यर्थ है, वह तो केवल आप की सैनिक गतिविधियों से आश्वस्त होना चाहते हैं कि आप के कार्यक्रम उसके प्रति बगावत (क्रान्ति) तो नहीं, यदि आप उसे सन्तुष्ट करने में सफल हो जाते हैं तो वह आपका मित्रा बन जायेगा।

माता गंगा जी पिछले कड़वे अनुभव से भयभीत थी क्योंकि श्री गुरू अर्जुन देव जी को लाहौर आमन्त्रित करने पर उनको शहीद कर दिया गया था। इस बार वह कोई खतरा मोल नहीं लेना चाहती थी। किन्तु इस बार सम्राट और गुरूदेव के बीच मध्यस्थ के रूप में गुरू घर का सेवक वजीरखान था जिनका मान रखना भी आवश्यक था। अतः अन्त में यह निर्णय लिया गया कि गरूदेव जाये और सम्राट का भ्रम दूर करें, जिससे बिना कारण तनाव उत्पन्न न हो, गुरूदेव जी ने दिल्ली प्रस्थान करने से पूर्व दरबार साहब की मर्यादा इत्यादि कार्यक्रम के लिए बाबा बुड्ढा जी व श्री गुरूदास जी को नियुक्त किया। तद्पश्चात एक सैनिक टुकड़ी साथ लेकर धीरे धीरे मंजिल तय करते दिल्ली पहुंच गए।

यमुना नदी के तट पर एक रमणीक स्थल देखकर श्री गुरू हरिगोविन्द साहब को शिविर लगाने को कहा गया। कहा जाता है कि एक शताब्दी पहले यहां मजनू नाम का दरवेश रहता था, जिसकी अब वहां समाधि थी। यह घटना सन् १६१२ ईस्वी तदानुसार संवत १६६९ की है।

वजीरखान व किन्वा बेग ने सम्राट जहांगीर को सूचना दी कि श्री गुरू हरिगोविन्द जी को हम अपने साथ लाने मे ंसफल हुए हैं। इस पर सम्राट ने उनको आदेश दिया कि उनको हर प्रकार की सुख सुविधा उपलब्ध करवाई जोय तथा उससे हमारी मुलाकात का समय निश्चित कर दिया जाए। इस बीच जब दिल्ली की सिक्ख संगतों को मालूम हुआ कि गुरूदेव यहां पधारे हुए हैं तो उनके दर्शनों को तांता लग गया।

अगले दिन बादशाह के कुछ वरिष्ठ अधिकारी आपकी आगवानी करने के लिए आये और उन्होंनें गुरूदेव जी से निवेदन किया कि आप को सम्राट ने दर्शनों के लिए याद किया है। उस समय आप स्थानीय संगतों में घिरे बैठे थे। आपने कुछ समय में ही संगतों से विदाई ली और दिल्ली के पुराने किले में बादशाह से भेंट करने पहुंचे। उस समय जहांगीर ने आपका स्वयं स्वागत किया और अपने सामान्तर एक आसन पर विराजमान होने

को कहा। जहांगीर आपके व्यक्तित्त्व व शारीरिक रूपरेखा से बहुत प्रभावित हुआ, वह आपका सौन्दर्य निहारता ही रह गया। आप उस समय केवल १८ वर्ष के युवक थे। औपचारिक वार्त्ता के पश्चात् सम्राट ने गुरूदेव की योग्यता का अनुमान लगाने के विचार से प्रश्न किया - पीर जी, इस मुल्क में दो बड़े मजहब हैं, हिन्दू व मुसलमान। आप बतायें कि कौन सा मजहब अच्छा है? उत्तर में गुरू देव ने कहा - वही मतावलम्बी अच्छे हैं जो शुभ कर्म करते हैं और अल्लाह के खौफ में रहते हैं। यह संक्षिप्त सा उत्तर सुनकर सम्राट की संतुष्टि हो गई कि यह युवक भले ही शाही पोशाक में है, किन्तु आध्यात्मिक दुनियां में भी कोई मुकाम रखता है। इसके अतिरिक्त सम्राट ने गुरूदेव से कई विषय पर चर्चा की जब उस की तसल्ली हो गई कि यह वास्तव में श्री गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी होने के नाते भीतर से किसी ऊंचे आदर्श के स्वामी हैं तो उसने गुरूदेव को एक भेंट दी। जिसे गुरूदेव ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और वहां से विदा लेकर अपने शिविर में लौट आये।

शेर का शिकार

श्री गुरू हरिगोविन्द जी अपने स्वभाव अनुसार निकट के वनों में अपने जवानों के साथ शिकार खेलने चले जाते। जब यह बात सम्राट को मालूम हुई कि गुरू जी एक अच्छे शिकारी भी हैं तो उसके मन में विचार आया कि क्यों न मैं भी शिकार खेलने चलूं और गुरू जी के शिकार खेलने की योग्यता अपनी आंखों से देखुं। अतः उसने शिकार खेलने का कार्यक्रम बनाया और गुरूदेव को इस खेल में निमन्त्राण भेजा। गुरूदेव इस संयुक्त अभियान के लिए तैयार हो गये।

इस संयुक्त अभियान में बहुत से प्रसिद्ध शिकारियों को सम्राट ने साथ में लिया। घने जंगलों में गुरूदेव जी ने बहुत से हिंसक पशु मार गिराये। तभी सूचना मिली कि निकट के जंगल में एक विशालकाय शेर का निवास स्थल है, तब क्या था, गुरूदेव ने उस दिशा में अपना घोड़ा मोड़ लिया। सम्राट उस समय हाथी पर सवार था। उसने भी हाथी के महावत को उसी ओर चलने को कहा कि अकस्मात् निकट ही से शेर अपनी मांद में से भयभीत गर्जन करते हुए बाहर आ गया। मुख्य शिकारी इधर उधर छिपने लगे, सभी भय के मारे कांपने लगे। तभी गुरूदेव घोड़े से नीचे अपने शस्त्रा लेकर उतर आये। सम्राट ने हाथी और शेर के बीच कुछ गजों का अन्तर ही रह गया था कि तभी गुरू जी मध्य में खड़े हो गये और शेर को ललकारने लगे। भारी गर्जन से शेर उछला और गुरूदेव पर झपटा किन्तु गुरूदेव ने अपनी ढाल पर उसे रोकते हुए, अपनी तलवार से उसे बीच में से काट कर दो भागों में बांट दिया। यह भीयीत दृश्य और अगम्य साहस, आत्म विश्वास देखकर सम्राट अति प्रसन्न हुआ। उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था कि उसने आश्चर्यपूर्ण कौतुहल देखा है।

एक श्रमिक घासिएं का वृत्तन्त

जब दिल्ली की संगत को यह ज्ञात हुआ कि श्री गुरू हरिगोविन्द जी ने एक विशालकाय शेर को उसकी मांद में से निकालकर सदा की नींद सुला दिया है तो वे गुरूदेव के दर्शन को उमड़ पड़े। इस बीच सम्राट ने मंत्राी वजीर खान के हाथ गुरूदेव को संदेश भेजा कि कृपा आप हमारे साथ आगरा चले, रास्ते में शिकार खेलने का आनन्द लेंगे। गुरूदेव ने यह प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सम्राट अपना शाही साजो सामान लेकर आगरा के लिए चल पड़ा। पीछे पीछे गुरूदेव ने भी अपना शिविर हटा कर शाही लश्कर के साथ चलना शुरू कर दिया। रास्ते में कई रमणीक स्थानों पर पड़ाव डाले गये और शिकार खेला गया। इस बीच सम्राट ने अनुभव किया कि श्री हरिगोविन्द जी को उनके अनुयायी बहुत ही सम्मान देते हैं और उन्हें सच्चे पातशाह कह कर सम्बोधन करते हैं। वह इस बात को लेकर जिज्ञासा में पड़ गया कि इस का क्या कारण हो सकता है ? उसने कोतुहलवश समय मिलने पर इस प्रश्न का उत्तर गुरूदेव से पूछा - उत्तर में गुरूदेव ने कहा - ह मने तो किसी सिक्ख (शिष्य) को कभी कहा नहीं कि वह हमें सच्चे पातशाह कहे परन्तु उनकी अपनी श्रद्धा है। वे श्रद्धावश ऐसा कहते हैं तो इस में हम क्या कह सकते हैं। इस उत्तर से सम्राट सन्तुष्ट नहीं हुआ वह कहने लगा इस का अर्थ यह हुआ कि हम झूठे पातशाह हैं और आप सच्चे ? उत्तर में गुरूदेव ने कहा - इस प्रश्न का हम उत्तर दे सकते हैं किन्तु उससे आप का संशय निवृत नहीं होगा। आप धैर्य रखें समय आयेगा आप को इस बात का उत्तर सहज में स्वयं ही मिल जायेगा। सम्राट ने कहा - ठीक है, प्रतीक्षा करेंगे।

कुछ ही दिनों में शाही काफिला आगरा नगर के निकट पहुंच गया। इस काफिले में गुरूदेव जी का अलग से शिविर लगाया जाता था। इस बार शिविरों के निकट एक गांव था। उन लोगों को जब मालूम हुआ कि इस शिविरों में एक श्री गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी श्री गुरू हरिगोविन्द जी का शिविर है तो वहां के लिए संगत गुरूदेव के दर्शनों के लिए आने लगी। दोपहर का समय था, कुछ गर्मी थी। सभी कुछ समय के लिए भोजन उपरान्त विश्राम कर रहे थे कि एक गरीब श्रमिक सिर पर घास की गांठ उठाये वहां चला आया और वह वहां खड़े सन्तरियों से पूछने लगा कि मेरे सच्चे पातशाह का तम्बू कौन सा है ? संतरी उस की बात को समझा नहीं, वह उसे भगाने के विचार से डांटने लगा। यह ऊंचा स्वर जहांगीर बादशाह ने तम्बू में सुन लिया। सिक्ख उस संतरी की मिन्नत कर रहा था, मुझे दर्शनों के लिए जाने दो। मैं बहुत दूर से आया हूं। मैंने सच्चे पातशाह के दर्शन

करने हैं। किन्तु संतरी मान ही नहीं रहा था। इस पर बादशाह ने तुरन्त संतरी को आवाज लगा कर कहा - इसे अन्दर आने दो।

सिक्ख तम्बू के अन्दर पहुंचा। उसने कभी पहले श्री गुरू हरिगोविन्द जी को देखा नहीं था। उसने बादशाह को गुरू जी समझ कर वह घास की गांठ भेंट में रख दी और दो पैसे (तांबे के सिक्के) आगे रखकर मस्तिष्क झुका दिया और विनती करने लगा। हे गुरूदेव ! आप कृपया मुझ गरीब की यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें और मुझे इस भवसागर में आवागमन के चक्रव्यू से मुक्त करें। अब बादशाह चक्कर में फंस गया कि वह इस सिक्ख की मांग को कैसे पूरा करे क्योंकि वह तो भवसागर के आवागमन में स्वयं फंसा हुआ है। उसने सिक्ख को फुसलाने के विचार से कहा - हे सिक्ख आप कोई और वस्तु मांग ले जैसे हीरे मोती, जमीन-राज्य अथवा सोना, चांदी इत्यादि, मैं वह तो दे सकता हूं, परन्तु मेरे पास मोक्ष नहीं है। यह सुनते ही सिक्ख चौंका, वह सतर्क हुआ। उसने पूछा कि आप छटे गुरू हरिगोविन्द नहीं हैं ? उत्तर में बादशाह ने कहा कि नहीं, उनका तम्बू कुछ दूरी पर वह सामने है। यह सुनते ही उस सिक्ख ने वह घांस की गांठ व तांबे का सिक्का वहां से उठा लिया। इस पर जहांगीर ने कहा - यह तो मुझे देते जाओ इसके बदले कुछ धन-सम्पत्ति मांग लो, किन्तु सिक्ख अडिग रहा। वह जल्दी से वहां से निकल कर गुरूदेव के शिविर में पहुंचा। बादशाह के हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न हुई, वह सोचने लगा कि चलो देखते हैं, इसे इस के गुरू कैसे कृतार्थ करते हैं।

सिक्ख पूछता हुआ गुरूदेव के तम्बू में पहुंचा, उस समय गुरूदेव आसन पर विराजमान थे। उसने उसी प्रकार पहले वह घास की गांठ फिर वही सिक्के भेंट किये और मस्तिष्क झुका कर उसने यह निवेदन किया कि हे गुरूदेव ! मुझ नाचीज़ का जन्म-मरण निवारण करे। तभी गुरूदेव ने खड़े होकर उस सिक्ख को सीने से लगाया और उसे सांत्वना देत हुए कहा - हे सिक्ख तुम्हारी श्रद्धा रंग लाई है। आपको अब पुर्नजन्म नहीं लेना होगा, अब आप प्रभु चरणों में स्वीकार्य हुए। इस पर सिक्ख ने कहा - हे गुरूदेव ! मैं पहले भूल से शायद बादशाह के तम्बू में चला गया था, वह मुझे बहला-फुसला रहा था, किन्तु मैं उसकी बातों में नहीं आया। यह सब दृश्य छिपकर बादशाह देख रहा था। इसके पश्चात् उस के मन का संशय निवृत्त हो गया कि सच्चा पातशाह कौन है ?

सम्राट को राजकीय ज्योतिषि द्वारा ग्रहों का प्रकोप बताना

श्री गुरू हरिगोविन्द जी के सम्राट के साथ मधुर सम्बन्ध देखकर चन्दू शाह को बहुत चिन्ता हुई। वह अपना रचा हुआ षड्यन्त्रा विफल होता देख, भयभीत होने लगा। वह तो गुरूदेव का अनिष्ट करवाना चाहता था किन्तु हुआ उसकी विचारधारा के विपरीत। अब वह नई चाल चलने के प्रयास में लग गया। उसने राजकीय ज्योतिष को अपने विश्वास में लिया और उसे ५००० रूपये देने निश्चित किये, जिसके अन्तर्गत वह सम्राट को भ्रम में डालेगा कि उस पर भारी विपत्ति आने वाली है क्योंकि उस के पक्ष में ग्रह नक्षत्रा नहीं और इस संकट को टालने का एक ही उपाय है कि कोई महान विभूति उसके पक्ष में ४० दिन अखण्ड जप तप करे।

वास्तव में जहांगीर हिन्दु संस्कारों में पला हुआ व्यक्ति था, उसकी किशोर अवस्था राजस्थान के राजपूत घरानों (ननिहाल) में व्यतीत हुआ था। अतः वह पंडितों ज्योतिषों के चक्कर में पड़ा रहा था। राजकीय ज्योतिषि ने चन्दूशाह का काम कर दिया। सम्राट उस के भ्रमजाल में फंस गया। इस प्रकार सम्राट बेचेन रहने लगा कि उस का कुछ अनिष्ट होने वाला है। दरबार में मंत्रियों ने इस का कारण पूछा तो सम्राट ने बताया कि कोई ऐसा व्यक्ति ढूंढों जो मेरे लिए जप तप किसी सुरक्षित स्थान में करे। यह सुनते ही चन्दू शाह ने विचार रखा। इन दिनों आपके साथ ही तो हैं गुरू नानक देव जी के उत्तराध्किारी, उनसे महान और कौन हो सकता है, वही इस कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्ति हैं। बादशाह ने गुरूदेव को तुरन्त बुला भेजा, गुरूदेव ने बादशाह को बहुत समझाने का प्रयास किया कि ग्रह नक्षत्रों का भ्रमजाल मन से निकाल बाहर करो। आपके जीवन में किसी प्रकार की विपत्ति नहीं आने वाली है किन्तु वह हठ करने लगा कि नहीं, कृपया आप मेरे लिए ४० दिन अखण्ड घोर तपस्या करें। गुरूदेव जी ने यह कार्य भी करना स्वीकार कर लिया। इस पर चन्दू द्वारा सिखाये गये मंत्रियों द्वारा सुरक्षित स्थल के रूप में ग्वालियर के किले को सुझाया गया।

इस प्रकार गुरूदेव ४० दिन की अखण्ड घोर तपस्या के लिए ग्वालियर के किले के लिए प्रस्थान कर गये। ग्वालियर किले का स्वामी जिस का नाम हरिदास था, चन्दूशाह का गहरा मित्रा था, उस पर चन्दू को पूर्ण भरोसा था, इसलिए चन्दूशाह ने उसे पत्रा लिखा कि तेरे पास हरिगोविन्द तपस्या करने आ रहे हैं, इन्हें विष दे देना। यह वापस जीवित लौटने नहीं चाहिएं। उस कार्य के लिए उसे मुंह मांगी धन राशि दी जाएगी।

गुरूदेव ग्वालियर के किले में

श्री गुरू हरिगोविन्द जी का ग्वालियर के किलेदार ने भव्य स्वागत किया क्योंकि उसे सम्राट की ओर से आदेश मिला कि गुरूदेव जी मेरे लिए वहां तपस्या करेंगे। अतः इन्हें किसी प्रकार की भी असुविधा नहीं होनी चाहिए और प्रत्येक प्रकार का खर्च सरकारी खजाने से किया जाये। उस समय गुरूदेव के साथ उनके पांच निकटवर्ती शिष्य भी थे।

ग्वालियर के किले में पहले से ही हर राजनीतिक कैदी कारावास भोग रहे थे। इन पर आरोप बगावत का था। यह छोटे छोटे राज्यों के स्वामी

अति कष्टमय जीवन जी रहे थे। गुरूदेव के किले में निवास करने से इनके जीवन में क्रान्ति आ गई। सभी कष्ट मंगलमय जीवन में परिवर्तित हो गये। गुरूदेव जी की दिनचर्या इस प्रकार प्रारम्भ होती। आप प्रातः कीर्तन श्रवण करते, यह कीर्तन अलाप आपके शिष्य प्रतिदिन करते। तद्पश्चात आप स्वयं वहां के कैदियों के समक्ष प्रवचन करते और उसके पश्चात्! आप अपने विशेष कक्ष में चिन्तन-मनन में रम जाते। संध्या समय फिर कीर्तन तद्पश्चात रहिरास का पाठ इत्यादि होता। जो सरकारी खजाना गुरूदेव पर व्यय होना था, गुरूदेव उसे वहां के कैदियों की आवश्यकताओं पर न्योछावर कर देते। आप वहां का भोजन नहीं करते थे। आपके भोजन के लिए आपके सिक्ख नगर में जा कर प्रतिदिन परिश्रम करते, उस से जो आय होती, उसकी वह रसद खरीदते और उस को पका कर गुरूदेव को भोजन करवाते। नित्यप्रति सत्संग श्रवण करने से स्थानीय किलेदार हरिदास आप का परम भक्त बन गया। जब उसे चन्दूशाह का पत्रा मिला तो वह बहुत क्रोधित हुआ। उसने वह पत्रा गुरूदेव के समक्ष रख दिया। गुरूदेव ने वह पत्रा बहुत सावधानी पूर्ण सुरक्षित रख दिया। इस प्रकार ४० दिन व्यतीत होते मालूम ही नहीं हुए। गुरूदेव भजनबंदगी में लीन थे, किन्तु गुरूदेव के शिष्यों में चिन्ता हुई कि हमें वापिस बुलाने का आदेश कब आयेगा। परन्तु कोई सन्देश नहीं आया। ऐसा मालूम होता था कि जहांगीर ऐश्वर्य में सब कुछ भूल चुका है अथवा उसे भूलने का प्रयास किया जा रहा है।

उन दिनों ग्वालियर का किला बहुत बदनाम किला माना जाता था। यहां से कोई कैदी जीवित बाहर नहीं निकल पाता था। जब यह समाचार अमृतसर माता गंगा जी को मालूम हुआ तो वह बहुत चिंतातुर हुई। उन्होंने बाबा बुड्ढा जी को सांई मियां मीर जी के पास भेजा कि आप इस विषय में हस्तक्षेप करें और बादशाह पर दबाव डाले कि वह श्री गुरू हरिगोविन्द जी को तुरन्त ग्वालियर के किले से वापिस बुलाए।

सांई मियां मीर जी दिल्ली जाने का प्रस्ताव मान गये। बाबा बुड्ढा जी व सांई मियां मीर जी के नेतृत्त्व में एक प्रतिनिधि मण्डल दिल्ली बादशाह के पास पहुंचा। श्री गुरू हरिगोविन्द जी को तब तक लगभग ६५-७० दिन ग्वालियर के किले में हो चुके थे। इस बीच सम्राट को रात में भयभीत करने वाले स्वप्न आने लग गऐ, उसे ऐसा जान पड़ता कि कोई विकराल विराट स्वरूप शक्ति उसके पेट पर बैठी उसे धमका रही है कि तू याद कर तुमने क्या भूल की है, तुमने किसी महान व्यक्तित्त्व के स्वामी को स्वार्थ सिद्धि के लिए बंदन में डाला हुआ है। जब सम्राट तोबा तोबा करता तो वह शक्तियां अदृश्य हो जातीं। किन्तु सम्राट अनुभव करता, यह स्वप्न नहीं प्रत्यक्ष है। वह अपने दरबारियों से किसी बात की चर्चा करता तो चन्दूशाह के पढ़ाए हुए मंत्राी उसे बहला फुसला कर कह देते, ऐसा अक्सर हो जाता है, कभी कभी डरावने स्वप्न आ ही जाते हैं। किन्तु बादशाह को फिर कुछ दिनों पश्चात् वैसा ही भयभीत करने वाले दृश्य अर्धरात्रि में दिखाई देने लगे। जैसे ही अमृतसर से आये प्रतिनिधि मण्डल की भेंट वार्ता बादशाह से हुई, उसने सांई मियां मीर जी से अपने स्वप्नों का रहस्य पूछा ? उन्होंने बादशाह को बताया कि तुमने हरिगोविन्द जी को बंध्न में डाला है और उन्हें वापिस बुलाना भूल गये हो। बस फिर क्या था, बादशाह ने तुरन्त आदेश दिया कि श्री गुरू हरिगोविन्द जी को आदर सहित दिल्ली वापिस लाओ। किन्तु गुरूदेव जी ने किले से बाहर आने से साफ इन्कार कर दिया, उनका कहना था कि यहां से सभी राजनैतिक कैदियों को भी हमारे साथ स्वतन्त्रा किया जाये। बादशाह के लिए बहुत गम्भीर समस्या थी, उसने इस का समाधान निकालते हुए आदेश दिया जो कैदी गुरूदेव का दामन थाम कर बाहर आ सकते हैं, उन्हीं को अनुमति होगी, बाकी वहां रहेंगे। गुरूदेव जी ने इस समस्या का भी समाधान किया, उन्होंने तुरन्त ५२ कलियों वाला एक विशाल चोला बनवाया और उसे पहन कर किले से बाहर निकलते समय एक एक कली समस्त कैदियों को थमा दी, किन्तु चोला तो भूल से ५० कली का ही बन पाया था। जिस कारण दो कैदी पीछे छूट गये, वे गुहार लगाने लगे, हमारा क्या होगा, उनकी याचना सुनकर गुरूदेव जी ने अपने गले में पड़े हुए पल्लू के दोनों छोरों को बाकी बचे दोनों कैदियों को थमा दिया। इस प्रकार सम्राट की शर्त पूरी करके सभी कैदियों को सदैव के लिए स्वतन्त्राता दिलवा दी। जब सभी कैदियों के बन्धन समाप्त हो गये तो उन्होंने गुरूदेव जी को 'बन्दी छोड़' के नाम से सम्बोधन किया। यह उनकी दी हुई उपाधि गुरूदेव के साथ उपनाम के रूप में स्थापित हो गई।

गुरूदेव की ग्वालियर से अमृतसर वापसी

श्री गुरू हरिगोविन्द जी को मंत्राी वज़ीर खान ग्वालियर के किले से लौटा लाया। उसने उनको फिर से यमुना नदी के तट पर मजनू दखेश की समाधि के निकट ही ठहराया, अब उनके साथ वे ५२ नरेश भी थे जो बगावत के अरोपों के अन्तरगत वहा लम्बे समय से करावास में पड़े हुए थे। बादशाह को गुरूदेव के दिल्ली पहुंचे का समाचार दिया गया। अगले दिन भेंट के लिए बादशाह ने उन्हें किले में बुलाया इस बार बादशाह ने गुरूदेव का भ्व्य स्वागत किया और उनके कहने पर सभी नरेशो से अच्छे आचरण का वचन लेकर उनके राज्यों में भेज दिया गया। जब उसने गुरूदेव से कुशल क्षेम पूछी तो गुरूदेव जी ने वह पत्रा जो चन्दू शाह ने किलेदार हरिदास को लिखा था बादशाह के सामने धर दिया। चन्दू की कुटलता के विषय में वह पहले भी मंत्राी बजीर खान व साई मीयां मीर जी से सुन चुका था अब उस के हाथ एक पक्का सबूत लग गया। उसने चन्दू को अपराधी जानकर उसे गुरूदेव के हाथों सोप दिया और कहा मुझे क्षमा मैं आपके पिता का हत्यारा नहीं हूं। इस पर गुरूदेव ने कहा - अपराधी का निणर्य तो अब अल्लाह के दरबार में ही होगा। उन दिनों न्याये विधान के अनुसार हत्यारे को प्रतिद्वंदी पक्ष को सोप दिया जाता था। सिखों ने जल्दी से चन्दूशाह को अपने कब्जे में लिया और उसे अमृतसर कैदी के रूप में भेज दिया।

बादशाह से विदा लेकर लोटने का कार्यक्रम गुरूदेव ने बताया इस पर बादशाह ने गुरूदेव के सवमक्ष प्रस्ताव रखा मैं काशमीर पर्यटन के लिए जा रहा हूँ कृपया आप कुछ दिन और रूके इकट्ठे ही चले लगे आप का रास्तें में साथ, समय अच्छा कटता रहेगा। गुरूदेव ने कहा ठीक है। इस प्रकार

आध्यात्मिक विचारो को श्रवण करने का आनंद उठाते हुए बादशाह मंजिले तैह करते हुए व्यासा नदी पार करके गोईंवाल नगर पहुंचे। यह स्थल पूर्व गुरूजनों का था इस लिए गुरूदेव वहां ठहर गये और बादशाह से कहा अब हम यहां से रास्ता बदल कर अपने नगर अमृतसर जाएंगे। आपने तो काशमीर जाना है अतः आप लाहौर को जाएंगें। किन्तु बादशाह ने कहा - आप से बिछुड़ने का मन नहीं हो रहा और मेरा मन आप द्वारा निर्मित नगर आशेर वहां के सभी भवन इतयादि देखने का विचार है। सम्राट की इच्छा सुनकर गुरूदेव से उसे अपने यहां आने का न्योता दिया। बादशाह के स्वागत के लिए गुरूदेव जी का एक दिन पहले गोईंवाल से अमृतसर के लिए प्रस्थान कर गया जब गुरूदेव अमृतसर पहुंचे तो उस दिन दिवाली का पर्व था। गुरूदेव जी के अमृतसर पधारने पर समसत नगर में दीप माला की गई और मिठाईयां बांटी गई। दो दिन के अन्तर मैं बादशाह भी अपने काफले सहित पहुंच गया गुरूदेव ने उस का भव्य स्वागत किया सम्राट स्थानीय भवन व निर्माण कला देखकर आति प्रसन्न हुए उसने परम्परा अनुसार श्री दरबार साहब की परिक्रमा की और हिर मन्दिर में बैठकरख गुरू घर के कीर्तनीयों से गुरूवाणी श्रवण की इस आवधि में उस का मन स्थिर अथवा शांत हो गया वह एक अगम्य बातावरण का अनुभव करने लगा जहां ईर्ष्या, तृष्णा, द्वैतवाद था ही नहीं, वहां थी तो केवल आध्यात्मिक उनति रहस्यमय वायुमण्डल, जिस में भ्रातृत्व के अतिरिक्त कुछ न था। सुखद अनुभूतियों का आनंद प्रापत कर सम्राट ने इच्छा प्रकट की कि उसे माता जी से मिलवाया जाये।

माता गंगा जी से भ्रेट होने पर सम्राट ने पांच सौ मोहरे अर्पित की और नतमस्तक हो प्रणाम किया साथ में क्षमा याचना की कि उनके पति की हत्या में उसका कोई हाथ नहीं। उसने तो केवल दुष्टों व ईर्ष्यालुयों के चुंगल में फंसकर गुरवाणी की जांच के आदेश दिये थे। इस पर माता जी ने काह - इस बात का निर्णय तो उस सच्ची दरगाह में होगा और वह मोहरे उड़वाकर गरीबों में वितरण करवा दी ज़हांगीर अमृतसर से लाहौर चल गया।

इस बीच सिक्खों ने चन्दू शाह को गुरूदेव की दृष्टि से बचाकर उसे लाहौर भेज दिया उनका विचार था कि गुरूदेव दयालु, कृपालु स्वभाव के है कहीं इसे क्षमा न कर दे। दुसरा वे चाहते थे कि चन्दू शाह के चेहरे पर कालिक पौत कर उसे वहीं घुमाया जाये जहां इस ने कुकर्म किया था। चन्दू आने किये पर पश्चाताप कर रहा था जिस कारण वह अन्दर से टूट गया। अपमान और ग्लानी के कारण अधमरा सा हो गया एक दिन उसे सिख, कैदी के रूप में लाहौर के बाजार में घुमा रहे थे कि एक भड़मूंजे ने उसके सिर पर डंडा दे मारा जिस से उसकी मृत्यु हो गई।

चन्दू शाह तो मर गया परन्तु वह विरासत में नफरत तथा ईर्ष्या छोड़ गया। चन्दूशाह का पुत्रा कर्मचन्द भी बाप की तरह गुरूदेव से शत्राुता की भावना रखता था। वह श्री गुरू हरिगोविन्द जी के हाथों दूसरे युद्ध में रणक्षेत्रा में मारा गया।

कुमारी कौलां गुरू शरण में

श्री गुरू हरिगोविन्द जी से विदा लेकर सम्राट लाहौर पहुँच तो गया किन्तु उस का मन नहीं लगा वह गुरूदेव से स्नेह करने लग गया था। अतः उसने समीप्ता प्राप्त करने के विचार सेअपने निकटवर्ती उपमंत्राी वजीर खान को अमृतसर भेजा कि गुरूदेव को कुछदिन के लिए लाहौर ले आये। उनके द्वारा विनती लिख भेजी कि मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया है, कृपया कश्मीर जाने से पहले एक बार पुनः दर्शन देकर कृतार्थ करें गुरूदेव जी उसकी विनती सहर्ष स्वीकार करके लाहौर पहुँच गये। वहाँ उन्होंने एक पंथ दो काज की कहावत अनुसार गुरूमति का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। आपको भुजंग नामक स्थान पर ठहराया गया। इस क्षेत्रा में गुरूदेव नित्यप्रति अपने कार्यक्रम चलाने लगे। दूरदराज के निवासी आपके प्रवचन सुनने आने लगे। आपकी महिमा सुनकर स्थानीय काजी की लड़की जिस का नाम कौलां था, वह आपके सत्संग में अपने लगी। यह युवती बड़ी धार्मिक प्रवृति की थी। वह सांई मियां मीर की शिष्य थी और उनपर उसे बहुत आस्था थी। उसने प्रभु स्मरण करने की दीक्षा सांई जीसे प्राप्त की थी। जिस का वह बहुत निर्भय होकरआनन्दमय जीवन जी रही थी। युवती कौलां श्री गुरू हरिगोविन्द जी के भव्य दर्शनों तथा प्रवचनों से इस कदर मुग्ध हुईकिप्रायः उनके सत्संग में भाग लेने पहुँच जाती, इस प्रकार वह गुरूदेव की परम शिष्य बन गई।

जब इस रहस्य का काजी को मालूम हुआ तो उसने अपनी पुत्राी पर प्रतिबंध लगा दिया और उसे सतर्क किया कि यदि वह गुरू के आश्रम में उनके प्रवचन सुनने जाएगी तो कड़ा दण्ड दिया जायेगा। इसपर बेटी कौलां ने विरोध किया औरकहा - 'अब्बा हजूर, पीरों-अवतारों के प्रवचन सुनने में क्याबुराई है ?'काजी का उत्तर था'- 'वह काफिर है' काफिरों के साथ मेल जोल रखना पाप है। किन्तु बेटी ने बगावत कर दी और कहा - 'अब्बा हुजूर, मुझे उनके पास जाने सेकोई रोकनहीं सकता। बेटी का यहदो टूकउत्तर सुनकर काजी की आँखों में खून उतर आया। वह दाँत भींचकर बोला, 'अगर तुमने मेरी बात नहीं मानी तो इसका अंजाम बहुत बुरा होगा ?' कौलांने पूछा - क्या मतलब?

काजी ने कहा - मतलब यही कि यदि तुमने दोबारा उस काफिर के पास जाने की जुर्रत की तो तुम्हारा कत्ल करवा दिया जाएगा। बाप तो धमकी देकर चला गया, किन्तु बेटी कौलां का दिल बैठ गया। भला गुरूदेव के दर्शन किए बिना उसका दिल कैसे मानता। अब क्या करे ? पिता की ध मकी निरर्थक नहीं थी। कौलां जानती थी कि यदि उसने पिता की आज्ञा की अवेहलना करते हुए गुरूदेव के सत्संग में जाने का प्रयास किया तो उसके पिता अपनी धमकी को पूरा करने में जरा भी नहीं देर नहीं लगायेंगे। समस्या का कोई समाधान न पाकर कौलां ने सांई मियांमीर की शरण ली और उन्हें काजी की धमकी से अवगत करवाया। सांई मियांमीर जी उन लोगों में से थे जो शरणागत की अवश्य ही सहायता करते थे। जब उन्होंने कौलां की दर्द भरी कहानी सुनी और गुरूदेव के प्रति उसका का अथाह स्नेह देखा तो सांई मियां मीर जी द्रवित हो उठे। वह तत्काल गुरू हरिगोविन्द जी से

मिले और कौलां की व्यथा कहसुनाई। उन्होंने सुझाव दिया कि कौलां की सुरक्षा करना आपका कर्त्तव्य है। यदि जरा सी उसकी हिफाजत में चूक हो गई तो उसका पिता, बेटी की हत्या करवा देगा। वह आपके दर्शनों के बगैर जी नहीं सकती। अतः अपने शिष्यों की रक्षा करना आप का ही कर्त्तव्य बनता है।

श्री गुरू हरिगोविन्द धर्मान्धिता के सख्त विरोधी थे। काजी का यह साम्प्रदायिक हठ उन्हें बहुत ही बुरा लगा। उन्होंने सांई मियां मीर का अनुरोध ा स्वीकार कर लिया और कौलां को अपने पास बुला लिया। गुरूदेव की पुकार पर कौलां दौड़ी चली आई। गुरूदेवने उसे अमृतसर भिजवा दिया और स्वयं कुछ दिनों के अन्तराल में अपने कार्यक्रम के अनुसार भुजंग क्षेत्रा से कूच कर अमृतसर लौट आये। अमृतसरमें कौलां कोएक अलग से निवास स्थान दिया गया। कौलां गुरूदेव की इस सहायता से आजीवन कृतज्ञ रही। अब वह अभय होकर गुरूदेव के दर्शन प्राप्त करती थी तथा उनके प्रवचन सुनकर उपकृत होती थी। कौलां की यह श्रद्धा भक्ति रंग लाई, जहाँ उनका निवास स्थान था, वहां उनकी स्मृति में माई कौलां के नाम से कौलसर नामक सरोवर का निर्माण किया गया। आज भी लोग उनके मार्मिक प्रसंग एक दूसरे को सुनाकर उनके त्याग को याद करते हैं। आप का देहान्त करतारपुर नगर में हुआ।

सुलक्षणी देवी की मनोकामना फलीभूत

पंजाब का एक ग्राम जिस का नाम चब्बा था, वहां एक महिला के कोई सन्तान नहीं हुई। उसने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बहुत से उपचार भी किये और अनेक धार्मिक स्थलों पर सन्तान प्राप्ति के लिए प्रार्थनाएं भी की। अनेको आध्यात्मिक पुरूषों के पास अपनी याचना लेकर पहुँची किन्तु उत्तर मिला - माता तेरे भाग्य में सन्तान सुख नहीं लिखा, अतः आप संतोष करे। किन्तु महिला के हृदय में धैर्य कहां- वह सदैव चिन्तित रहने लगी। धीरे धीरे उसकी आयु भी प्रोढ़ावस्था के निकट पहुंचने लगी। एक दिन उसकी एक सिक्ख से भेंट हुई। उसने उस महिला को सिखाया कि आप श्री गुरू नानक देव जी के छटे उत्तराधिकारी श्री गुरू हरिगोविन्द जी के पास प्रार्थना करो, किन्तु हो सकता है वह भी तुम्हें यही कह दे कि माता तेरे भाग्य में सन्तान सुख नहीं। अतः आप युक्ति से उनके दर पर जाकर याचना करें, शायद बात बन जाएगी।

इस महिला का नाम सुलक्षणी था। उसने सिक्ख से युक्ति को ध्यान से समझा और विशेष तैयारी करके वह प्रतीक्षा करने लगी। एक दिन उसे मालूम हुआ कि श्री गुरू हरिगोविन्द जी चब्बे ग्राम के निकट जंगलों में शिकार खेलने आए हुए हैं, वह तुरन्त उनका रास्ता रोकर खड़ी हो गई। गुरूदेवके पूछने पर कि आप को क्या चाहिए? तो सुलक्षणी ने बहुत आत्म विश्वास से याचना की - हे गुरू नानक देव के उत्तराधिकारी मेरी कोख हरी होनी चाहिए, नहीं तो मैं इस संसार से नपूती चली जाऊँगी। गुरूदेव ने उसे ध्यान से देखा और कहा - माता तेरे भाग्य में सन्तान सुख नहीं लिखा। इस पर सुलक्षणी ने तुरन्त कलम दवात तथा कागज आगे प्रस्तुत कर दिया और कहा - हे गुरूदेव ! आप और प्रभु में कोई अन्तर नहीं। यदि मेरे भाग्य में पहले नहीं लिखा तो कोई बात नहीं, आपकृपा करें और अब लिख दें। इस निर्धारित युक्ति को देख गुरूदेव मुस्कराए और उन्होंने माता से कागज लेकर उस पर एक १ लिखना प्रारम्भ ही किया था उनके घोड़े ने टांग हिला दी, जिससे गुरूदेव की कलम हिलने से एक का सात अंक बनगया। उसे गुरूदेव ने कहा - लो माता तुम एक पुत्रा चाहती थी किन्तु विधाता को कुछ और ही मन्जूर है, अब तुम्हारे यहाँ सात पुत्रा जन्म लेंगे। गुरूदेव का वचन पूर्ण हुआ। कुछ समय पश्चात् माता सुलक्षणी के यहां क्रमशः सात पुत्रा हुए जो गुरू नानक देव जी के पंथ पर अपार श्रद्धा भक्ति रखते थे।

पैंदे खान

श्री गुरू हरिगोविन्दजी पंजाब के मांझे क्षेत्रा में प्रचार दौरे पर चल पड़े। आप जी करतारपुर में ठहरे। यह नगर श्री गुरू अर्जुनदेव जी द्वारा बसाया गया था। जब स्थानीय संगत को ज्ञात हुआ कि गुरू अर्जुन देव जी के सुपुत्रा श्री गुरू हरिगोविन्द जी पधारे हैं तो वहाँ अपारजन समूह एकत्रित हुआ। आप की उपमा सुनकर इस क्षेत्रा के पठान कबीले के लोग इस्माइल खान नामक चौधरी के नेतृत्त्व में आप की शरण में आये और उन्होंने विनती की कि उन्हें आप अपनी सेना में भर्तीकर ले। इन युवकों में एक गिलजी जाति से सम्बन्धित पठान बहुत ही सुन्दर, हष्ठ-पुष्ठ शरीर का था, जिसका नाम पैंदे खान था। गुरूदेव इस पठान को यौद्धा रूप में देख रीझ उठे। आपने इन लोगों में से छब्बीस जवानों को अपनी सेना में भर्ती कर लिया और पैंदे खान को गुरूदेव ने विशेष प्रशिक्षण देने के विचार से कुछ अधिक सुख-सुविधाएं प्रदान कर दी और उसे बहुत पौष्टिक आहार दिया जाने लगा। जल्दी ही पैंदे खान पहलवान के रूप में उभर कर प्रकट हुआ। वह शारीरिक शक्ति के कई करतब दिखा कर जन-साधारण को आश्चर्य में डाल देता था।

उसने अपनी वीरता का प्रदर्शन तब किया जब लाहौर के राज्यपाल की सेना के सेनापति मुस्लिस खान को क्षण भर में मृत्यु शैया पर सुला दिया। गुरूदेव के साथ अन्तिम युद्ध के प्रतिद्वन्द्वी पक्ष के रूप में पैंदे खान स्वयं ही था। इन घटनाओं का विस्तृत वर्णन आगे के वृत्तन्त में किया जाएगा।

भाई गोपाला जी

श्री गुरू हरिगोविन्द जी ने अपने पूर्वज गुरूजनों के अनुसार कोई भी आध्यात्मिक ज्ञान की काव्य रचना नहीं की किन्तु वह अपने पूर्वज गुरूजनों

की रचित वाणी पर अथाह श्रद्धा, विश्वास रखते थे।वह प्रायः गुरूवाणी का कीर्तन श्रवण करते समय एकाग्र हो जाते और उनकी सुरति प्रभु चरणों में जुड़ जाती थी।

एक दिन उनका का दरबार सजा हुआ था और संगत को शुद्ध वाणी उच्चारण का महत्त्व बता रहे थे कि जहाँ शुद्ध वाणी पढ़ने से अर्थ स्पष्ट होते हैं, वहीं मनुष्य को आत्मबोद्ध भी होता चला जाता है। भावार्थ यह कि शुद्ध वाणी पढ़नी ही आध्यात्मिक प्राप्तियाँ करवाता है। तभी उनके मन में आया कि संगत में ऐसा कोई व्यक्ति है जो शुद्ध 'जपुजी साहब' का पठन करने में निपुण हो? तभीउन्होंने घोषणा की कि है कोई व्यक्ति जो हमें शुद्ध 'जपु जी साहब' नामक वाणी का शुद्ध उच्चारण करके सुना सकता हो ? वैसे दरबार में बहुत सुलझे हुए व्यक्ति और भक्तजन थे जो यह कार्य सहज में कर सकते थे किन्तु संकोचवश कोई भी साहस करके सामने नहीं आया। जब गुरूदेवने संगत को दोबारा ललकारा तो एक व्यक्ति उठा, जिसका नाम गोपाल दास था, वह गुरूदेव के समक्ष हाथ जोड़ विनती करने लगा कि यदि मुझे आज्ञा प्रदान करें तो मैं शुद्ध पाठ उच्चारण करने का पूर्ण प्रयास करूंगा। गुरूदेव ने उसे एक विशेष आसन पर बिठाया और उसे गुरू वाणी शुद्ध सुनाने का आदेश दिया।

भाई गोपाल दास जी, बहुत ध्यान से सुरति एकाग्र करके पाठ सुनाने लगे। शुद्ध पाठ के प्रभाव से संगत आत्मविभोर हो उठी, उस समय आलौकिक आनन्द का अनुभव सभी श्रोतागण कर रहे थे। गुरूदेवजी भी अपने सिहांसन पर बैठे किसी दिव्य अनुभूतियों में खोये अपने सिहांसन में धीरे धीरे सरकने लगे, जब आप ३/४ तीन चौथाई सरक गये तो उस समय अकस्मात् भाई गोपालदास जी के हृदय में कामना उत्पन्न हुई कि यदि गुरूदेव मुझे पुरस्कार रूप में एक इरानी घोड़ा दे दें तो मैं उनका कृतज्ञ हो जाऊँगा। उसी समय गुरूदेव पुनः अपने सिहांसन पर पूर्ण रूप से विराजमान हो गये। पाठ की समाप्ति पर गुरूदेव ने रहस्य स्पष्ट करते हुए कहा - संगत जी, हम शुद्ध पाठ के प्रतिक्रम में गुरू नानक की जो विरासत हमारे पास है, वह गुरू की गद्‌दी ही भाई गोपाल जी को सोंपने लगे थे किन्तु उनके हृदय में पाठ के अन्तिम भाग में एक तृष्णा ने जन्म लिया कि मुझे यदि घोड़ी उपहार में मिल जाये तो कितना अच्छा हो। अतः हम उन्हें घोड़ी उपहार में दे रहे हैं।

भाई गोपाल दास जी ने स्वीकार किया कि उनके मन में इसी संकल्प ने जन्म लिया था। भाई गोपाल जी ने कहा हम साँसारिक जीव हैं, तुच्छ सी वस्तुओं के लिए भटक जाते हैं।

श्री अटल राय जी

श्री गुरू हरिगोविन्द जी के पाँच पुत्रा थे। उनका चौथा पुत्रा अटल राय जी बहुत तेजस्वी थे। वह प्रतिक्षण सहज रूप में चिंतनमनन में लीन रहते परन्तु साधारण अवस्था में अपने आयु के बच्चों के साथ सामान्य रूप से खेल कूद में भाग लेते। भजनके प्रताप से उनको वाक्य सिद्धि प्राप्त हो गई वह जो हृदय से कह देते वह तुरन्त सत्य हो जाता। अभी उनकी आयु केवल नौ वर्ष की ही थी कि एक दिन सीदो-खुंडी (हाकी) खेलते समय अंध ेरा हो गया। दिखाई न देने के कारण खेल स्थगित कर दिया गया। अगलेदिन मोहन नामक प्रतिद्वन्द्वी पक्ष का नेता नहीं आया। मालूम करने पर ज्ञान हुआ कि रात को उसे साँप ने डस लिया है जिस कारण उस की मृत्यु हो गई है। यह बात गुरू सुपुत्रा श्री अलट जी को कुछ भायी नहीं। उन्होंने सहज में कहा - वह मसक्रा है वैसे ही बहाना करता है कि बारी न देनी पड़े। चलो उसे घर से उठा कर लाते हैं। श्री अटल जी ने वहाँ पहुँचने पर घर का वातावरण शांत हो गया। अटल जी मोहन की चारपाई पर पहुँचे और उन्होंने अपनी खुंडी (हाकी) उस के गले में डाल दी और कहा - बहाने न बना, जल्दी से हमारे साथ चल और अपनी बारी दो। मोहन तुरन्त बिस्तर छोड़कर श्री अटल राय जी के साथ चल पड़ा। यह आश्चर्य देख सभी स्तब्ध ा रह गये। धीरे धीरे इस घटना की चर्चा गुरूदेव तक पहुंची। जब उनको मिलने श्री अटल राय जीआये तो वह बहुत नाराज दिखाई दिये। श्री अटल राय जी ने पूछा कि आज आप मुझ से बोलते क्यों नहीं? इस पर श्री हरिगोविन्द साहब जी कहनेलगे, बेटे तुमने प्रकृति के कार्यमें हस्ताक्षेप किया है, तुम मुर्दो को जीवित करने लगे हो। इस प्रकार तुम उस परमात्मा के प्रतिद्वन्द्वी बन गये हो तुमने आत्मबल का दुरूपयोग किया है। अब नगर में कोई मर जाया करेगा तो वह उस मुर्दे को हमारे पास ले आया करेगें कि लो आप इसे जीवित करें। तुम्हारे दादा जी ने अनेकों यातनाएं और कष्ट सहन किये, परन्तु किसी को शाप देकर उस का अनष्टि नहीं किया जब कि उनके पास आत्मबल के भण्डार थे। उनका मानना था कि सब कुछ प्रभु हुक्म से हो रहा है। हुक्ममें सन्तुष्ट रहना ही वास्तिक भक्ति है। अब इस भूल को सुधारना है मोहन तो अब जीवित रहेगा किन्तु उसके पश्चाताप में एक जीवन प्रभु को भेंट करना होगा। यह सुनते ही श्री अटल राय जी घर छोड़कर एकान्त स्थान में समाधि लीन हो गये और आत्मबल से शरीर त्याग दिया।

जब गुरूदेव को इस दुर्घटना की सूचना मिलीतो वह शान्तचित्त रहे और उन्होंने अपने प्रिय पुत्रा की अंत्येष्टि वहीं कर दी। फिर उनकी याद में एक नौ मंजिल वाली इमारत बनवाई और उनको वरदान दिया तेरे इस स्थल से कोई भूखा प्यासा नहीं लौटेगा सदैव भोजन परोसा जाएगा। बाबा अटल जी की स्मृति में लोगों ने किवंदन्तियां प्रचलित कर रखी है - 'बाबा अटल पक्की पाई घल'।

भाई तिलका जी

भाई तिलकाजी श्री गुरू हरिगोविन्द साहब के समकालीन एक सिक्ख हुए हैं। आप गढ़शंकर, जिला होशियारपुर के विनासी थे। आपने श्री गुरू

अर्जुन देव जीसे चरण-पाहुल लेकर सिक्खी धारण की थी। गुरू हरिगोविन्द जी ने उन्हें जिला होशियारपुर का प्रचारक नियुक्त किया हुआ था। नगरके लोग आपके जीवन शैली से बहुत प्रभावित थे।

भाई तिलकाजी केनिकट हीएक वृद्ध योगी का आश्रम था। आपके गुरूमति प्रचार के कारण योगी की मान्यता लोगों में घटती जा रही थी। इस कारण योगी मन ही मन ईर्ष्या की आग में जलता ही रहता था। योगी भान्ति भान्ति के पाखण्ड करके लोगोंपर प्रभाव डालने की चेष्टा करता रहता था, परन्तु सिख (गुरूमति) सिद्धान्तों के समक्ष उसका ढोंग चल नहीं पा रहा था।

एक दिन योगी ने एक नया पाखण्ड रचा। उसने अपने शिष्यों के माध्यम से यह सूचना फैला दी कि शिव रात्रि की रात में योगी को शिव भगवान के दर्शन हुए हैं और भोलेनाथ ने उसे वरदान दिया है कि जो व्यक्ति उसके दर्शन करेगा उसे एक वर्ष के लिए स्वर्ग लोक की प्राप्ति होगी।

इस प्रकार यह समाचार समस्त क्षेत्रा में फैल गया। बेचारे भोले भाले व अज्ञानी लोग योगी के चंगुल में फंसने लगे। भारी संख्या में लोग योगी के दर्शन करने लगे। किन्तु विवेकी पुरूषों पर जो कि गुरूवाणी समझते थे, कोई प्रभाव न हुआ। इस बात से योगी छटपटा उठा, वह तो चाहता था कि किसी न किसी कारण भाई तिलका जी उसके आश्रम में पहुँचे किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। इस पर योगी ने अपने सहायकों की सहायता से भाई तिलका जी को संदेश भेजा कि वह योगी के दर्शन करे और आपके लिए विशेष व्यवस्था है आप को पूरे पाँच वर्ष के लिए स्वर्ग की प्राप्ति होगी। भाई साहब तो पूर्ण गुरूसिक्ख थे। उन्होंने योगी की एक न सुनी और कहा योगी ढोंगी है। अतः मैं उस के पाखण्ड जाल में फंस ही नहीं सकता।

जब योगी की सब युक्तियां विफल हो गई तो अन्त में वह पराजित होकर स्वयं भाई तिल का जी के द्वार पर उनको दर्शन देने आया। जब भाई तिलका जी को योगी के आने की सूचना मिली तो उन्होंनेअपने घर के दरवाजे बन्द कर लिए। योगी ने आकर दरवाजा खटखटाया व ऊँची आवाज में कहने लगा, मैंआपके लिए स्वयं चल कर आया हूं। आप मेरे दर्शन करो और स्वर्ग लोक प्राप्त करो।

इस पर भाई तिलका ने उत्तर दिया कि मैं दरवाजा नहीं खोलूंगा। क्योंकि मैं तेरे जैसे पाखण्डी की सूरत भी देखने के लिए तैयार नहीं। तुम लोगों में भ्रमजाल फैला कर लूट रहे हो। मैं गुरू का सिख हूं। अतः मुझे स्वर्ग की कोई आवश्यकता ही नहीं। हम गुरू चरणों से ऐसे कई स्वर्ग न्यौछावर कर सकते हैं।

यह उत्तर सुनकर योगी को भारीआघात हुआ। उसका सर्वत्रा कांप उठा। वह सोचने लगा कि ये कैसे सिख हैं जो अपने गुरू की शिक्षाओं को स्वर्ग से भी उत्तम मानते हैं। यदि यह सिक्ख इतना महान है तो इसका गुरू कितना महान होगा। वह सोचता रहा कि उस गुरू का उपदेश व वाणी कितनी आत्मज्ञान पूर्ण होगी, जिसे पढ़कर यह इतने सुदृढ़ हो गये हैं और मेरे जैसे पाखण्डियों का भंडा फोड़कर देते हैं। इसलिए शायद यह धोखा नहीं खा सकते। योगी ने भाई तिलका जी को गुरू की दुहाई दी और कहा - कृपया दरवाजा खोलो और मुझे आप दर्शन दें और मुझे भी उस गुरू के दर्शन करवाओ जिसके तुम शिष्य हो। इस पर भाई जी ने दरवाजा खोल दिया। भाई तिलका जी ने योगी से कहा - सत्य मार्ग केपंथी पाखण्ड नहीं करते वह तो एक निराकार प्रभु के चिन्तन मनन को ही साधन बनाकर प्रेम भक्ति द्वारा इस भवसागर से पार चले जाते हैं। योगी के अनुरोध पर भाईतिलकाजी ने स्थानीय संगत को साथ लेकर गुरू दर्शनों के लिए अमृतसर प्रस्थान कर गये। वहां योगी ने पाया कि श्री गुरू हरिगोविन्द जी तो एक युवक हैं, उसने शंका व्यक्त की कि इतनी अल्पायु में इन्हें ब्रहमज्ञान कैसे प्राप्त हो गया? उत्तर में उसे गुरूदेव ने बताया कि ज्ञान का सम्बन्ध ा आयु से नहीं होता, ज्ञान का सम्बन्ध तो उपदेश कमाने में है।

प्रथम युद्ध

सम्राट जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् श्री गुरु हरिगोविन्द साहब के प्रशासन के साथ सम्बन्धों में वह मधुरता न रही। धीरे धीरे कट्टरपंथी हाकिमों के कारण तनाव बनता चला गया। एक बार गुरूदेव अमृतसर से उत्तर-पश्चिम की ओर जंगलों में शिकार खेलने के विचार से अपने काफिलने के साथ दूर निकल गये। इतफाक से उसी जँगल में लाहौर का सुबेदार (राज्यपाल) भी अपनी सैनिक टुकड़ी के साथ आया हुआ था। दोनों पक्षों के शिविर तो बहुत दूर थे किन्तु उनके बाज जो कि वायुमण्डल में शिकार के लिए छोड़े गये थे, आपस में भिड़ गये। देखते ही देखते गुरूदेव का बाज विपक्षी बाज को पराजित करके अपने खेमे में ले आया। सिक्खों ने सरकारी बाज विजयता के रूप में पकड़ लिया। जब राज्यपाल कुलीन खान का बाज वापिस नहीं लौटा तो उसे सिपाही उधर ढूंढते हुए आये तो उन्होंने पाया कि वह बाज सिक्खों के पास है। सिपाहियों ने बाज लौटाने के लिए कहा - इस पर सिक्खों ने तर्क दिया कि शिकार के नियमों अनुसार आप का बाज पराजित होकर हमारे खेमे में पहुंचा है। अतः बाज हमारा हुआ। (इस खेल में भी पतंगबाजी के नियम लागू होते हैं) किन्तु सिपाही नहीं माने। वे बाज बलपूर्वक हथियाना चाहते थे किन्तु सिक्खों ने ऐसा नहीं होने दिया। दोनों पक्षों में इस बात को लेकर बहुत विवाद हुआ। परिणामस्वरूप सरकारी सैनिक धमकी देकर लौट गये और कह गये कि बाज न लौटाने के बदले में युद्ध के लिए तैयार रहो।

लाहौर के राज्यपाल कुलीज खान ने इस घटना को अपने लिए चुनौती माना और उसने गुरूदेव पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। युद्ध का नेतृत्त्व मुखलस खान ने सम्भाला और उसने घोषणा की वह सिक्खों के पीर (गुरू जी) को जीवित ही पकड़ लायेगा। वह सात हजार सैनिक लेकर अमृतसर पर आक्रमणकारी हुआ। इस बीच लाहौर की संगत ने गुरूदेव को सूचना भेजी की कि मुखलस खान विशाल सैन्य बल लेकर आप पर विजय प्राप्त करने के लक्ष्य से अमृतसर की ओर बढ़ रहा है। बस फिर क्या था, समय रहते गुरूदेव ने नगर खाली करवा लिया और मोर्चाबन्दी प्रारम्भ कर दी। किला लौहगढ़ में सभी प्रकार की तैयारियां पूर्ण कर ली गई। वहां एक कारीगर ने एक काठ की तोप बना कर गुरूदेव के समक्ष प्रस्तुत की। इसकी विशेषता यह थी कि इस के अन्दर एक विशेष धातु की चादर मढ़ी हुई थी। जो तोप के गोलों को अचूक फैंकने में सहायक सिद्ध होती थी। इतफाक से गुरूदेव की बेटी कुमारी वीरो जी का शुभ विवाह निश्चित था अगले दिन बारात ने आना था परन्तु सदैव प्रभु इच्छा पर न्यौछावर होने वाले गुरूदेव प्रसन्नचित थे। वह बिल्कुल भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने अपने सभी जवानों को प्रोत्साहित किया और अपने परिवार के सदस्यों को झबाल ग्राम भेज दिया। यहां का
चौधरी लंगाह जी गुरूदेव का परमभक्त था। दूसरी ओर समधी को संदेश भेजा कि वह बारात झंबाल गांव लेकर पहुंचे। अब युद्ध में दो-दो हाथ करने का समय आ गया था। रणक्षेत्रा में जाने से पहले गुरूदेव ने पहले स्नान करके दरबार साहब में उपस्थित होकर गुरू चरणों में प्रार्थना की। फिर परिक्रमा करके रणक्षेत्रा की ओर चल दिये।

मुखलस खान का लक्ष्य था कि सर्वप्रथम अमृतसर नगर की घेराबन्दी की जायेगी और प्रातःकाल नगर पर धावा बोलकर पीर को गिरतार कर लिया जायेगा। और दोपहर तक सब काम निपटाकर लाहौर लौट आयेंगे। किन्तु उस की योजनाओं पर पानी फिर गया। अमृतसर की सीमा में प्रवेश करते ही लौहगढ़ के जवानों ने उसकी सेना को भारी क्षति पहुचाई। उनकी लकड़ी की तोप बहुत काम आई। किन्तु किले के भीतर न अधिक जवान थे न गोला सिक्का। अतःजल्दी ही शत्राु का किले पर नियन्त्राण हो गया। परन्तु वहां शत्राु के हाथ निराशा के अतिरिक्त कुछ नहीं लगा। वे बढ़ते हुए गुरूदेव के निवास स्थान पर पहुंचे। वहाँ मिठाइयां के अम्बार लगे हुए थे किन्तु दूर दूर तक कोई व्यक्ति नहीं दिखाई देता था। अतः शत्राु ने समझा गुरूदेव और उनकी सेना यह क्षेत्रा छोड़ कर चले गये हैं, इसलिए भूख के कारण उन्होंने सभी मिठाइयों को अपना आहार बनाया और वहीं सो गये। दूसरी तरफ सूर्य उदय होते ही गुरूदेव ने शाही सेना पर आक्रमण करने के आदेश दे दिये। जब मुखलस खान की सेना को दबोच लिया गया तो उनकी नींद खुली, तब तक शाही सेना की भारी क्षति हो चुकी थी जब मुखलस खान के सैनिकों ने मोर्चा सम्भाला तब सिक्ख सैन्यबल उन पर भारी हो चुके थे। शाही सेना यह देखकर परेशान थी कि गुरूदेव के जवान समर्पित होकर शहीद होने की तीव्र इच्छा से लड़ते थे। उनमें लेशमात्रा भी मृत्यु का भय नहीं था जबकि शाही सेना केवल अपनी जीविका को चिरस्थाई बनाने के लक्ष्य को लेकर अपने प्राणों को सुरक्षित करते हुए लड़ते थे। अतः शाही सेना लड़खड़ा गई। उनके पैर उखड़ने लगे। जबकि संख्या अथवा अनुपाल की दृष्टि से वह गुरूदेव के जवानों से तीन गुणा थे। शाही सेना हैरान-परेशान थी कि साधारण दिखने वाले देहाती इतने वीर कैसे हो गए ? दूसरी तरफ मुखलस खान अपने सिपाहियों को ललकार-ललकार कर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर रहा था किन्तु उसके सैनिकों के पास न दृढ़ साहस था न दृढ़ विश्वास। वे जल्दी ही रक्षात्मक युद्ध लड़ने लगे। मुखलस खान की योजनाएं क्षण भर में खटाई में पड़ गई। वह अपने स्वप्नों को नष्ट होते देख रहा था। भले ही इस घमासान युद्ध में गुरूदेव के बहुत से योद्धा वीरगति पा गये किन्तु मरते मरते शत्राु सेना को लोहे के चने चबवा गये। शाही सेना यह अनुभव कर रही थी कि उनको यह पहला अवसर देखने को मिला है जहाँ इतना कड़ा मुकाबला करना पड़ रहा हो। लम्बे चले संग्राम में मुखलस खान के वरिष्ठ अध्किारी धीरे धीरे मौत के घाट उतारे जा रहे थे। दोपहर होते होते वह अकेला ही रह गया। अतः कोई चारा न देख कर वह स्वयं रणक्षेत्रा में आगे बढ़ा। दूसरी तरफ गुरूदेव भी अपने साथ पैंदे खान और
विधि चन्द को लेकर आमने सामने हुए। गुरूदेव की तरफ से पैंदे खान, मुखलस खान का सहायक सुलतान बेग आपस में भिड़ गये। मुखलस खान का घोड़ा गुरूदेव की तलवार से कट मरा। मुखलस खान पैदल हो गया इसलिए गुरूदेव ने भी घोड़ा त्याग दिया और मुखलस खान को ललकारा लो पहला वार कर लो कहीं मन में शंका न रहे कि मौका ही नहीं मिला। मुखलस खान ने पूरे दांव लगा कर वार किया परन्तु गुरूदेव पैंतरा बदल कर वार रोक गये और घूम कर ऐसा वार किया कि मुखलस खान वहीं ढ़ेर हो गया। बस फिर क्या था शाही सेना देखते ही देखते भाग खड़ी हुई और मैदान गुरूदेव जी के हाथ लगा।

शाही सेना की पराजय की सूचना जब सम्राट शाहजहाँ को मिली तो उसे बहुत हीनता अनुभव हुई। उसने तुरन्त इस पूर्ण दुखान्त ब्यौरा मँगवाया और अपने उपमंत्राी वजीर खान को पंजाब भेजा। जैसा कि विदित है कि वजीर खान गुरू घर का श्रद्धालु था और वे समस्त सत्य तथा तथ्यपूर्ण विवरण सहित बादशाह शाहजहाँ को लिख भेजा कि यह युद्ध गुरूदेव पर थौपा गया था। वास्तव में उनकी पुत्राी का उस दिन शुभ विवाह था। वह तो लड़ाई के लिए सोच भी नहीं सकते थे। शाहजहाँ अपने पिता जहाँगीर से गुरू उपमा प्रायः सुनता ही रहता था। अतः वह शान्त हो गया किन्तु उसने लाहौर के राज्यपाल को उसकी इस भूल पर स्थानान्तरित कर दियाँ ।

हरिगोबिन्द पुर में द्वितीय युद्ध

श्री गुरू अर्जुन देव जी ने अपने जीवनकाल में अनेकों कार्य किये थे परन्तु करतारपुर नगर का निर्माण उनका अद्बितीय कार्य था। इसी प्रकार श्री गुरू हरिगोविन्द साहब ने भी एक नवीनतम नगर बसाने के उद्देश्य से व्यास नदी के किनारे सामरिक दृष्टि से उचित क्षेत्रा देखकर भूमि खरीद ली और नगर बसाना प्रारम्भ किया। नगर की आधारशिला रखते समय नगर को सुन्दर स्वच्छ और अति आधुनिक बनाने की योजना बनाई गई। नगर का नाम गोबिन्दपुरा रखा गया। किन्तु आप को इतना समय नहीं मिल पाया कि नगर के विकास पर पूरा ध्यान केन्द्रित किया जा सके। समय के अन्तराल के साथ लोग इस नगर को हरिगोबिन्दपुर पुकारने लगे।

इस क्षेत्रा का स्थानीय लगान वसूली का अधिकारी भगवान दास घेरड़, समस्त क्षेत्रा को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति ही मानता था। जैसे ही सम्राट जहाँगीर की मृत्यु हुई और शाहजहाँ गद्दी पर बैठा तो उस की नीतियों में भी भारी परिवर्तन आया, उसने हिन्दुओं से बहुत से अधिकार छीन लिए और सिक्ख गुरूजनों से मतभेद उत्पन्न कर लिये। जैसे ही शासक लोगों से अनबन की बात भगवान दास घेरड़ को मालूम हुई तो उसे एकशुभ अवसर प्राप्त हो गया। वह चाहता था कि किसी न किसी विधि से हरिगोबिन्द पुर से सिक्खों की पकड़ ढ़ीली पड़ जाए और वह इस क्षेत्रा से दूर हो जाए। किन्तु हुआ इसके विपरीत। श्री गुरू हरिगोविन्द साहब प्रचार दौरा करते हुए वहाँ आ गये और पुनः नगर का विकास करने लगे। इस विकास योजना में उन्होंने स्थानीय मुसलमान भाइयों की माँग पर एक मस्जिद का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। मस्जिद के निर्माण की बात भगवान दास घेरड़ को अच्छी नहीं लगी। वह इन कार्यों में बाधा उत्पन्न करने के लिए अपने कुछ सहयोगियों को लेकर गुरूदेव के समक्ष आया और बहुत गुस्ताख अंदाज में वार्तालाप करने लगा। उसकी अवज्ञापूर्ण भाषा को पास में बैठे हुए सिक्खों ने अपने लिए चुनौती माना। किन्तु गुरूदेव जी ने शान्ति के संकेत के कारण मन मार कर रह गये। किन्तु भगवानदास को संतुष्टि नहीं हुई। कुछ दिन पश्चात अन्य सहयोगियों को लेकर पुनःआ धमका और फिर से गुस्ताख भाषा में धमकियां देने लगा कि तुम लोगों की प्रशासन से अनबन है। यदि तुमने इस क्षेत्रा से अपना कब्जा न हटाया तो हम बल प्रयोग करेंगे।

इतना सुनते ही इस बार सिक्खों ने उसे दबोच लिया और खूब पीटा। कुछ अधिक पिटाई हो जाने के कारण वह मृत है या जीवित, भेद करना कठिन हो गया। तभी कुछ सिक्खों ने उसे उठाकर ब्यासा नदी में बहा दिया।

जब यह सूचना उसके पुत्रा रतनचंद को मिली कि तुम्हारा पिता भगवान दास सिक्खों के हाथों मारा गया है तो वह तुरन्त दीवानचंदू के पुत्रा कर्मचन्द से मिला। फिर वे दोनों जालन्धर के सूबेदार (राज्यपाल) अब्दुल खान से मिले। उन दोनों ने अब्दुल्ला खान को गुरूदेव के विरूद्ध खूब भड़काया और सहायता का अनुरोध किया। अब्दुल्ला खान तो ऐसे ही अवसरों की तलाश में था। उसे सूचना दी गई कि इस समय गुरू जी के पास फौज न के बराबर है वैसे भी उनके पास देहाती निम्न श्रेणी के लोग हैं, जो युद्ध की बात सुनते ही भाग खड़े होंगे।

राज्यपाल अब्दुल्ला, बादशाह शाहजहाँ को खुश करना चाहता था। उसने बहुत सतर्कता बरतते हुए दस हजार जवानों की विशाल सेना लेकर गुरूदेव पर आक्रमण कर दिया उधर गुरूदेव पहले से ही तैयारियों में जुटे हुए थे। उन्होंने भी संदेश भेजकर आसपास के सभी अनुयायियों को संकट का सामना करने के लिए आमंत्रित कर लिया था।

जब दोनों सेनाएं आमने सामने हुई तो घमासान कत युद्ध हुआ। शाही सेना को कड़ा मुकाबला झेलना पड़ गया। उनका अनुमान कि विशाल शाही सेना देखकर शत्राु भाग खड़ा होगा, झूठा साबित हो गया। पहले दिन के युद्ध में ही शाही सेना के कई वरिष्ठ अधिकारी मुहम्मद खान, बैरक खान, अली बख्श खेत रहे। रात्रि होने तक शाही सेना की मर टूट गई और राज्यपाल अब्दुल्ला खान के स्वप्न चकनाचूर हो गये, उसने अपना सारा क्रोध ा करमचन्द व रतनचन्द पर निकाला। उसे एक तरफ तो इन दोनों की बात में दम लगता था किन्तु युद्ध का परिणाम उसके विरूद्ध जा रहा था, वह आश्चर्य में था कि उस की विशाल प्रशिक्षित सेना अपने से चौथाई देहातियों से क्यों पराजित हुई जा रही है ?

दूसरी तरफ गुरूदेव के समर्पित सिक्ख केवल श्रद्धावश अपना तन मन व धन गुरू पर न्यौछावर करने पर तुले हुए थे। वे अपनी जान को हथेली पर रखकर गुरू की प्रशंसा प्राप्त करने के लिए अपने प्राणों की आहुति देने के लिए तत्पर थे। ऐसे में केवल कुछ चाँदी के सिक्कों की प्राप्ति के बदले लड़ने वाले सौनिक उनका सामना करने में अपने को असमर्थ अनुभव कर रहे थे। बस यही कारण था कि शाही सेना के बार बार के आक्रमण बुरी तरह विफल हो रहे थे और उनकी भारी संख्या में सेना खेत रह गई थी। राज्यपाल अब्दुल्ला खान एक विचार बनाने लगा कि बची हुई सेना लेकर भाग लिया जाये किन्तु उसे गैरत (स्वाभिमानद्ध ने रोके रखा। वह सोचने लगा जो होगा देखा जाएगा कल का युद्ध अवश्य ही लड़ा जाए। वैसे युद्ध एक जुआ ही तो है। क्या पता कल हमारा पलड़ा भारी हो जाये।

सूर्य उदय होते ही पुनः युद्ध प्रारम्भ हो गया। दूसरे दिन का आक्रमण पहले दिन की अपेक्षा अधिक घातक था। चारों ओर योद्धा एक दूसरे से खूनी होली खेल रहे थे। कुछ परिणाम न निकलता देख अब्दुल्ला खान पश्चाताप करने लगा कि मैं भी बिना कारण किन मूर्खों के बहकावे में आ

गया और अल्लाह के बंदो पर हमला कर बैठा। परन्तु अब पीछे हटना कायरता थी, मजबूरी में उसने अपने बेटे नबी बख्श को रणक्षेत्रा में भेज दिया क्योंकि सभी वरिष्ठ अधिकारी मृत्यु शैया पर सो चुके थे।

नबीबख्श ने रणक्षेत्रा को खूब गर्म किया किन्तुवह जल्दी ही गुरूदेव के परम सेवक परसराम के हाथों मारा गया। इस पर राज्यपाल अब्दुल्ला खान का दूसरा लड़का जिसका नाम करीम बख्श था, ने सेना का नेतृत्त्व किया और युद्ध स्थल में पहुंचा। वह योद्धा था इसने युद्ध कौशल दिखाया किन्तु भाई विधि चन्द के हाथों खेत रहा। अब अब्दुल्ला खान हारे हुए जुआरी की तरह अन्दर से बुरी तरह टूट चुका था किन्तु अन्तिम दांव के चक्कर में वह स्वयँ बची हुई सेना लेकर घायल शेर की तरह गुरूदेव के समक्ष आ दमका, उसके साथ रतनचन्द और करमचन्द साथ थे। अब तक आधी शाही सेना मारी जा चुकी थी और बाकियों में अधिकाँश घायल थे। एक बार ऐसा महसूस होने लगा कि गुरूदेव इस नये हमले में घिर गये हैं किन्तु जल्दी ही स्थिति बदल गई। गुरूदेव ने उनके कई सैनिकों को तीरों से भेद दिया। उतने में गुरूदेव की सहायक सेना ठीक समय पर पहुंच गई और देखते ही देखते युद्ध का पासा पलट गया। गुरूदेव ने क्रमशः तीनों को अपनी कृपाण की भेंट चढ़ा दिया। करमचन्द और रतनचन्द के मरने पर केवल अन्तिम युद्ध अब्दुल्ला खान और गुरूदेव के बीच हुआ जो देखते ही बनता था। अब्दुल्ला खान ने कई घातक असफल वार गुरूदेव पर किये किन्तु गुरूदेव पैंतरा बदल लेते थे। जब गुरूदेव ने खण्डे का वार अब्दुल्ला खान पर किया तो वह दो भागों में विभाजित होकर भूमि में गिर गया। उसकी मृत्यु पर समस्त शाही सेना भाग खड़ी हुई।

शाही सेना भागते समय अपने घायल सैनिक तथा शव पीछे छोड़ गई। घयलों की सेवा सम्भाल गुरूदेव ने अपने अनुयायियों को विशेष आदेश देकर की और कहा किसी भी घायल के साथ भेदभाव न किया जाये। मृत सैनिकों के शवों को सैनिक सम्मान के साथ दफना दिया गया।

नानक मते के लिए प्रस्थान

श्री गुरू हरिगोविन्द साहब जी के सांडू सांई दास जी डरोली ग्राम में निवास करते थे। उन्होंने एक नई इमारत (हवेली) बनवाई। यह अति सुन्दर तथा सुख सुविधाओं को ध्यान में रखकर तैयार की गई थी। अतः सांई दास के हृदय में एक इच्छा ने जन्म लिया कि क्या अच्छा हो यदि इसके उद्घाटन के समय सर्वप्रथम इस में गरूदेव श्री हरिगोविन्द जी अपने पवित्रा चरण कमल डाले।

उन्हीं दिनों गुरूदेव जी को जिला पीलीभीत उत्तरप्रदेश के नानक मते के क्षेत्रा से भाई अलमसत जी द्वारा एक संदेश प्राप्त हुआ कि स्थानीय श्री गुरू नानक देव के स्मारक को सिद्ध योगी ईर्ष्यावश नष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं। उन्होंने वह पीपल का वृक्ष तथा वह चौपाल भी नष्ट कर दी है। अतः आप सहायता के लिए पहुंचे क्योंकिउनकी संख्या अधिक है तथा वह निम्न आचरण पर आ गये हैं।

गुरूदेव जी ने समय की पुकार को ध्यान में रखते हुए एक यात्राा का कार्यक्रम बनाया। पहले आप सपरिवार डरोली ग्राम पहुंचे और अपने सांडू भाई सांई दास को उनकी हवेली में प्रवेश कर के कृत्तार्थ किया। परिवार को कुछ दिनों के लिए यहीं छोड़कर आप आगे जिला पीलीभीत के लिए प्रस्थान कर गये।

जब आप नानक मते पहुंचे तो उदासी सम्प्रदाय के बाबा अलमसत आप की आगवानी करने के लिए पहुंचे और उन्होंने बताया कि किस प्रकार योगियों ने गुरू नानक देव जी के स्मारक को क्षतिग्रत किया है। जब योगियों ने गुरूदेव का सैन्यबल देखा तो वे भाग खड़े हुए और स्थानीय नरेश की सहायता प्राप्त कर युद्ध करने की योजना बनाने लगे किन्तु स्थानीय नरेश बाज बहादुर ने सूझबूझ से काम लिया। उसने दूत भेजकर गुरूदेव से वार्तालाप से समस्या का समाधान निकालते हुए एक संधि पर हस्ताक्षर करवा जिससे सदैव के लिए दोनों पक्षों का विरोध समाप्त हो गया। गुरूदेव ने क्षतिग्रत स्मारक का पुनः निर्माण करवाया और सभी संगत ने प्रभु चरणों में मिलकर प्रार्थना की, जिससे पीपल की नई कलियां निकल आईं। इस प्रकार जला हुआ पीपल का वृक्ष पुनः हरा हो गया।

समरथ रामदास से भेंट

पीलीभीत से लौटते हुए श्री गुरू हरिगोविन्द जी हरिद्वार ठहरे। आपके साथ हर समय अपना सैन्यबल रहता था। आपका वैभव देखकर महाराष्ट्र से आए हुए शिवाजी मराठा के गुरू समरथ राम दास ने संशय व्यक्त किया और कहा कि मुझे बताया गया है कि आप श्री गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी हैं किन्तु नानक देव जी तो त्यागी पुरूष थे ? जबकि आप शाही ठाठबाठ में शस्त्राधारी हैं ? आप कैसे साधु हुए ?

इस पर गुरूदेव ने उत्तर दिया कि श्री गुरू नानक देव जी ने केवल माया त्यागी थी, सँसार नहीं –

हमारा सिद्धान्त है :- *बातन फकीरी जाहिर अमीरी*
शस्त्रा गरीब की रक्षा।
जालम की भक्षा।

समरथ रामदास इस उत्तर से बहुत प्रसन्न हुए और कहा - यह बात हमारे मन भावति है। यहां से यह गुरूमति सिद्धान्त उन्होंने पल्ले बाँध ा लिया और समय मिलते ही अपने परम शिष्य शिवा को शस्त्रा उठाक र धर्म युद्ध करने की प्रेरणा दी।

माई भागभरी

श्री गुरू अर्जुन देव जी ने अपने समय में माधोदास नामक प्रचारिक को कश्मीर भेजा था कि वह वहां की जनता में गुरूमति सिद्धान्तों को प्रचार करे। इस मानुभव ने वहां एक विशेष केन्द्र बना कर सत्संगत की स्थापना की जहां नित्य प्रति कथा, कीर्तन तथा अन्य माध्यमों से गुरू मर्यादा का प्रवाह चलाया जाता रहा। आप के प्रभाव से एक स्थानीय ब्राह्मण सेवादास गुरू घर की प्रथाओं में अत्यन्त विश्वास रखने लगा। वह प्रतिदिन प्रातःकाल 'कड़ाह प्रसाद' तैयार करके संगत में बांटता और स्वयं निरगुण उपासना प्रणाली के आधार अनुसार चिंतन मनन में खोया रहता। उसकी माता भी उसके इन शुद्ध कार्यों से बहुत प्रभावित हुई। जब उसे मालूम हुआ कि पांचवे गुरू जी शहीद हो चुके हैं और अब उनके स्थान पर उनके सुपुत्रा जो कि युवास्था में हैं, श्री हरगोिवन्द जी उनकी गद्दी पर विराजमान हुए हैं तो उसके हृदय में एक इच्छा ने जन्म लिया कि मुझे भी गुरूदेव के दर्शन करने चाहिए। अब उनके समक्ष समस्या यह थी कि वृद्धावस्था में पँजाब कैसे जाया जाये। इस पर माता भागभरी के पुत्रा ने उन्हें बताया कि गुरू पूर्ण हैं जहाँ कहीं भी उन्हें भक्तगण याद करते हैं, वह पहुंच जाते हैं। बस फिर क्या था, माता जी ने अपनी श्रद्धा अनुसार श्री हरिगोविन्द जी को एक कुर्त्ता भेंट करने का लक्ष्य निर्धारित कर लिया और वह लगी उसके लिए सूत कातने फिर उन्होंने उस से वस्त्रा बनवाये और तैयार करके रख लिए, किन्तु गुरू जी नहीं आये। इस पर माता जी उन वस्त्रा को सम्मुख रखकर उनकी आरती करने लगी और हर समय गुरूदेव जी की याद में खोई रहने लगी। जब उसकी स्मृतियां वैराग्य रूप में प्रकट होकर द्रवित नेत्रा द्वारा दृष्टिमान होती तो वह प्रायः मूर्छित हो जाती, अब उनकी आयु भी कुछ अधिक हो चुकी थी। अतः वह प्रतिपल दर्शनों की अभिलाषा लिए आराधना में लीन रहने लगी।

दूसरी तरफ श्री गुरू हरिगोविन्द जी भी इस अगाध प्रेम की तड़प से रह ना सके। वह श्री दरबार साहब का कार्यभार बाबा बुड्ढ़ा जी को सौंप कर कश्मीर के लिए प्रस्थान कर गये। आप जी पहले लाहौर नगर गये। वहां से स्यालकोट पहुंचे। आपने जहां पड़ाव किया, वहां पानी नहीं था। आपने एक स्थानीय ब्राह्मण से पानी के श्रोत के विषय में पूछा तो उसने आपसे अनुरोध किया कि आप गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी हैं। कृपया इस क्षेत्रा को पानी का दान ही दीजिए। गुरूदेव उसके अनुरोध को अस्वीकार न कर सके। उन्होंने ब्राह्मण से कहा - तुम राम का नाम लेकर वह सामने वाला पत्थर उठाओ। ब्राह्मण ने आज्ञा मान कर ऐसा ही किया। पत्थर के नीचे से एक पेय जल का झरना उभर आया। स्थानीय निवायिों ने इस जल श्रोत का नाम गुरूसर रखा।

आप पर्वतीय क्षेत्रों को पार कर कश्मीर घाटी के समतल मैदानों में पहुँचे तो वहां आप का स्वागत भाई कट्टू शाह ने किया। यह मानुभव यहां पर सिक्खी प्रचार में बहुत लम्बे समय से संलग्न थे। भाई कट्टू जी ने समस्त जत्थे की भोजन व्यवस्था इत्यादि की। वहां से गुरूदेव ने अगला पड़ाव श्रीनगर में किया। वहीं निकट ही सेवादास जी का घर था। गुरूदेव जी घोड़े पर सवार होकर श्रीनगर की गलियों में से होते हुए माता भागभरी के मकान के सामने पहुंच गये। घोड़े की टापों की आवाज सुनकर सेवादास घर से बाहर आया तो पाया कि हम जिन को सदैव याद करते रहते हैं, वह सामने खड़े हैं। बस फिर क्या था, वह सुध-बुध भूल गया और गुरू चरणों में नतमस्तक हो कर बार बार प्रणाम करने लगा तभी माता भागभरी जी को भी सूचना मिली कि गुरूदेव जी आये हैं तो वह भी गुरू चरणों में उपस्थित हुई और कहने लगी कि मेरे धन्यभाग जो आप पँजाब से यहाँ इस नाचीज के लिए पधारे हैं उसने गुरूदेव जी को घर के आंगन में पंलग बिछा दिया और वह सुन्दर पोशाक जो उसने अपने हाथ से सूत कात कर बनाई थी, गुरुदेव जी को अर्पित की। गुरूदेव प्रसन्न हुए और उन्होंने माता जी को दिव्य दृष्टि प्रदान की। माता जी को अगम्य ज्ञान हो गया। उन्होंने गुरूदेव से अनुरोध किया कि अब मेरे श्वासों की पूंजी समाप्त होने वाली है, कृपया आप कुछ दिन यहीं रहे, जब मैं परलोक गमन करूँ तो आप मेरी अंत्येष्टि क्रिया में भाग लें। गुरूदेव जी ने उसे आश्वासन दिया, माता जी ऐसा ही होगा। एक उचित दिन देखकर माता जी ने शरीर त्याग दिया। इस प्रकार गुरूदेव जी ने माता जी के अन्तिम संस्कारों में भाग लेकर उनको कृतार्थ किया।

भाई कट्टू शाह

जैसे कि हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं कि भाई कट्टू शाह जी काश्मीर घाटी के प्रारम्भ में बारामूला नगर के निकट निवास करते थे। इस क्षेत्रा में जैसे ही यह समाचार फैला कि छटे गुरू श्री गुरू हरिगोवन्दि जी श्रीनगर गये हैं तो स्थानीय संगत उनके दर्शन करने के लिए सामुहिक रूप में चल पड़ी। रास्ते में वे लोग भाई कट्टू शाह जी के यहां उनकी धर्मशाला में ठहरे। सभी लोग अपनी अपनी श्रद्धा अनुसार गुरूदेव के लिए उपहार

लाये थे। इनमें एक सिख के हाथ में एक बर्तन था, जिस को उसने एक विशेष कपड़े से बांध कर ढका हुआ था। जैसे ही भाई कट्टू जी की दृष्टि उस पर पड़ी तो उन्होंने जिज्ञासावश पूछ लिया, इस बर्तन में क्या है ? उत्तर में सिख ने कहा – मैं गुरूदेव जी को एक विशेष किस्म की शहद भेंट करने जा रहा हूं, वही इस बर्तन में है। भाई कट्टू शाह जी को दमे का रोग था, उन्होंने सिख से कहा – यदि थोड़ी सी शहद मुझे दे दें तो मैं उस से दवा खा लिया करूंगा। किन्तु सिक्ख ने कहा – यह कैसे हो सकता है, पहले मैं गुरूदेव को इसे प्रसाद रूप में भेंट करूंगा, पीछे वह जिसे उनकी इच्छा हो, दें।

भाई कट्टू जी उस सिक्ख के उत्तर से शांत हो गये, क्योंकि उसका तर्क भी ठीक था। जब यह सिक्खों का जत्था श्री नगर गुरुदेव के सम्मुख उपस्थित हुआ तो सभी ने अपने अपने उपहार भेंट किये। जब वह सिक्ख अपना बर्तन गुरूदेव को अपिर्तत करने लगा तो उन्होंने उसे स्वीकार ही नहीं किया। सिख ने इस का कारण पछा तो गुरूदेव ने कहा : जब हमें इच्छा हुई थी, शहद चखने की तो आपने हमें दिया नहीं, अब हमें यह नहीं चाहिए। सिक्ख ने बहुत पश्चाताप किया परन्तु गुरूदेव जी ने कहा – आप लौट जायें, पहले हमारे सिख को दें जब उसकी तृष्णा तृप्त होगी तो हम इसे बाद में स्वीकार करेंगे।

सिख तुरन्त लौट कर कटटूशाह के पास आया और उनसे अवज्ञा की क्षमा याचना करने लगा। भाई कट्टू जी ने कहा – गुरूदेव तो वैसे ही अपने सिखों का मान बढ़ाने के लिए लीला रचते हैं। आपके कथन में भी तथ्य था, पहले समस्त वस्तुएं गुरू को ही भेंट की जाती है, इसमें क्षमा मांगने वाली कोई बात नहीं। किन्तु सिख ने कहा – मैं सिक्खी के सिद्धान्त को समझ गया हूं।

गरीब का मुँह ही गुरू की गोलक है।

शाह उद दौला, पीर से भेंट

श्री गुरू हरिगोविन्द साहब जी कश्मीर से लौटते समय पश्चिमी पँजाब के जिला गुजरात में ठहर गये। जब आप वहां पर पड़ाव डालकर विश्राम कर रहे थे तो स्थानीय संगत आपके दर्शनों को उमड़ पड़ी। नगर में चारों ओर चहलपहल दिखाई देने लगी। तभी वहां के स्थानीय पीर शाह–उद–दौला जी ने अपने शिष्यों से पूछा कि नगर में कौन आया हुआ है जो बहुत धूमधाम है ? उत्तर में उन्हें बताया गया कि गुरू नानक देव के छटे उत्तराधिकारी श्री गुरू हरिगोविन्द जी आये हुए हैं। इस पर उनकी जिज्ञासा बढ़ गई। उन्होंने फिर पूछा कि एक दरवेश के आने से इतनी हलचल कैसे हो गई तो उन्हें बताया गया कि यह साधारण फकीर नहीं, यह तो राजसी वेश–भूषा में विचरण करते हैं और इनके साथ सभी प्रकार के विलासता के साधन उपलब्ध ा हैं। यहाँ तक कि यह अपनी पत्नी तथा बच्चों को भी साथ लिए घूमते हैं।

यह सब जानकारी प्राप्त कर पीर शाह–उद–दौला के मन में बहुत से संश्यों ने जन्म लिया, वह रह नहीं सके। उन्होंने गुरूदेव से भेंट करने का निश्चय किया। जब पीर जी का गुरूदेव से सामना हुआ तो पीर जी कहने लगे –

हिन्दू क्या और पीर क्या ?
औरतें क्या और फकीर क्या ?
दौलत क्या और दरवेश क्या ?
पुत्रा क्या और योगेश क्या ?

इन प्रश्नों का उत्तर गुरूदेव ने भी उसी अंदाज में दिया –

औरत ईमान है
दौलत गुजरान है

पुत्रा निशान है
करनी प्रधान है
फकीर न हिन्दू न मुसलमान है।

उत्तर बहुत सुलझा हुआ था, अतः पीर जी संतुष्ट होकर नमस्कार करते हुए वापिस लौट गये।

बाबा बुड्ढा जी का निधन

बाबा जी श्री गुरू नानक देव जी को उनके चौथी प्रचारफेरी के अन्त में एक किशोर के रूप में मिले थे। गुरूदेव ने बालक की प्रतिभा व तीक्ष्ण

बृद्धि देखते हुए उनको अपने आश्रम करतारपुर (रावी नदी के किनारे वाला) में अपने परम शिष्यों में स्थान दे दिया और उनका वहीं प्रशिक्षा होने लगा। किन्तु उत्तराधिकारी की नियुक्ति के समय बाजी भाई लहणा जी ले गये।

बबा बुड्ढा जी के हाथों पाँच गुरूजनों को गुरू परम्परा के अंतर्गत विधिवत तिलक दिया गया। जब वह दीर्घ आयु के कारण परिश्रम करने में अपने को असमर्थ अनुभव कर रहे थे तो उन्होंने गुरूदेव से आज्ञा मांगी कि अपने पैतृक ग्राम रमदास, अपने परिवार में जाने की इच्छा प्रकट की। गुरूदेव ने उन्हें सहर्ष विदाकिया। जाते समय बाबा जी ने गुरू चरणों में निवेदन किया कि कृपया आप मेरे अन्तिम समय में अवश्य ही दर्शन देकर मुझे कृतार्थ करें गुरूदेव जी ने उन्हें वचन दिया कि ऐसा ही होगा।

आप जी का जन्म पिता सुंधे रंधावे के गृह माता शोरा के उदर से सन १५०६ के अक्तुबर को कथू नंगल ग्राम जिला अमृतसर में हुआ था। इन दिनों आपने अपना अन्तिम समय निकट जानकर श्री हरिगोविन्द जी के संदेश भेजा कि वह उन्हें दर्शन दे कर कृतार्थ करें संदेश प्राप्त होते ही गुरूदेव ग्राम रमदास पहुंचे और उन्होंने बाबा बुड्ढा जी से कहा - आपने पाँच गुरूजनों की निकटता प्राप्त की है, अतः हमें कोई उपदेश दें। इस पर बाबा जी के नेत्रा द्रवित हो गये और वह कहने लगे कि आप सूर्य हैं और मैं जुगनू अर्थात मैं तो आपका एक अदना सा सेवक मात्रा हूँ। आप को उस प्रभु ने समस्त विश्व की बरकतों से निवाजा है। आपने अपने लड़के भाना जी का हाथ गुरूदेव जी के हाथ में थमा दिया और निवेदन किया कि इसे आप सदैव अपना सेवक जानकर कृतार्थ करते रहें। अगले दिन प्रातःकाल बाबा जी ने शरीर त्याग दिया। गुरूदेव जी ने उनकी शव यात्राा में भाग लिया और अपने हाथों उनकी अंत्येष्टि क्रिया सम्पन्न की। तद्पश्चात् उनके सुपुत्रा श्री भाना जी को पगड़ी भेंट की। निधन के समय बाबा जी की आयु १२५ वर्ष थी।

भाई गुरदास जी का निधन

श्री गुरूदास जी श्री गुरू अर्जुन देव जी के रिश्ते में मामा लगते थे। जब श्री गुरू अमर दास जी ने गोइंदवाल बसाया था तो आपको श्री गुरू अंगद देव जी ने हुक्म किया कि समस्त परिवार को भी बासरके ग्राम से यहीं ले आओ। उसी आदेश अनुसार गुरू अमर दास जी ने अपना संयुक्त परिवार गोइंदवाल बसाया था। श्री गुरूदास जी आपके भ्राता के लड़के थे, जो बहुत ही प्रतिभाशाली थे, इसलिए आप जी ने उनकी विशेष शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध अपनी देखरेख में करवाया। इस प्रकार गुरूदास जी साहित्यिक जगत में बहुत ऊँची श्रेणी के विद्वानों में गिने जाने लगे। इस बहुमुखी प्रतिभा के कारण आपको श्री गुरू राम दास जी ने आगरा क्षेत्रा में प्रचारक नियुक्त किया था और कालान्तर में श्री गुरू अर्जुन देव जी ने आप को आदि ग्रंथ की सम्पादना करते समय लिखारी के रूप में नियुक्त किया था। इस प्रकार श्री गुरू हरिगोविन्द जी ने आप को श्री अकाल तख्त की स्थापना के पश्चात् प्रथम जत्थेदार के रूप में नियुक्त किया। आपने बहुत से काव्य रचनाएं भी की, जिन्हें सिख जगत में कवित कहा जाता है। आपकी इन रचनाओं को श्री गुरू अर्जुन देव जी ने वरदान दिया और कहा - यह रचनाएं आदि ग्रंथ साहब की कुंजी होगी। वर्तमान काल में यह रचनाएं गुरूवाणी तुल्य मानी जाती है।

जब आपने अनुभव किया कि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता तो आपने गुरूदेव से आज्ञा मांग कर गोइंदवाल निवास कर लिया। फिर आपने अनुभव किया कि मेरे श्वासों की पूंजी समाप्त होने वाली है तो आपने गुरूदेव जी को संदेश भेजा कि मुझे अन्तिम समय अवश्य ही दर्शन दें। गुरूदेव समस्त कार्य छोड़ कर उनका संदेश मिलते ही गोइंदवाल पहुंचे। अन्तिम समय में गुरूदेव जी के दर्शन कर भाई श्री गुरदास जी गद्गद् हो गये और उन्होंने कहा - मेरा कोई स्मारक नहीं बनाना। इस प्रकार उन्होंने शरीर त्याग दिया। गुरूदेव जी उनकी शव यात्राा में सम्मिलित हुए और उन्होंने अंत्येष्टि क्रिया सम्पन्न कर दी। आपकी आयु उस समय ७५ वर्ष थी।

भाई विधिचन्द जी के करतब

श्री गुरू हरिगोबिन्द जीके दर्शनों को अफगानिस्तान के नगर काबुल से संगत काफिले के रूप में आई तो उनमें वहाँ का धनाढ़य सेठ भाई करोड़ीमल जी, दो अच्छी नस्ल के घोड़े गुरूदेव को भेंट करने के लिए लाये। इन घोड़ों का नाम गुलबाग व दिलबाग था। जब यह काफिला लाहौर नगर से गुजर रहा था तो इन घोड़ों पर लाहौर के प्रशासक अनाइत-उल्ल की दृष्टि पड़ गई। अनाइत-उल्ल ने यह घोड़े खरीदने की इच्छा प्रकट की किन्तु भाई करोड़ी मल जी ने उसे यह कह कर स्पष्ट इन्कार कर दिया कि ये घोड़े हमने अपने गुरूदेव को भेंट करने हैं। अतः बेचे नहीं जा सकते। इस पर प्रशासक अनाइत-उल्ल ने वे घोड़े बलपूर्वक छीन लिए और शाही अस्तबल में बाँध लिए।

जब काबुल नगर की संगत गुरूदेव के सम्मुख उपस्थित हुई तो सेठ करोड़ीमल ने अपनी व्यथा कह सुनाई। उत्तर में गुरूदेव ने उसे सांत्वना दी और कहा - वे घोड़े हम युक्ति से प्राप्त कर लेंगे आप धैर्य रखें। तभी गुरूदेव ने भाई विधिचन्द को बुलाकर आदेश दिया कि आप लाहौर जाकर इसी युक्ति से वे घोड़े वहाँ से निकाल लायें। गुरूदेव जी का आशीष प्राप्त कर विधिचन्द लाहौर नगर पहुंचे। वहाँ उन्होंने अपनी वेश-भूषा एक घास बेचने वाले व्यक्ति वाली बना ली और बहुत बढ़िया घास की गाँठ बनाकर शाही किले के समक्ष घासियों की कतार में बैठ गये। अस्तबल का दरोगा जब घास खरीदने के विचार से जब विधिचन्द की घास जांचने लगा और उसने मूल्य पूछा तो उसे ज्ञात हुआ कि विधिचन्द की घास अच्छी है और मूल्य भी उचित

है। अतः वह घास खरीद ली गई और घासिये से कहा गया कि वह घास उठाकर अस्तबल में घोड़ों को डाल दें यह क्रम कई दिन चलता रहा। इस बीच विधिचन्द ने उन दो घोड़ों की पहचान कर ली और उनकी सेवा करने लगा। दरोगा ने प्रसन्न होकर उन को घोड़ों की देखभाल के लिए नौकर रख लिया। विधिचन्द जी ने निर्धारित लक्ष्य के अनुसार अपना वेतन वहाँ के सन्तरियों पर खर्च करना प्रारम्भ कर दिया। जब सभी का वह विश्वास प्राप्त कर चुके तो उन्होंने एक रात उन में से एक घोड़े पर काठी डाल कर उसे तैयार कर किले की दीवार फांदकर रावी नदी के पानी में छलांग लगा दी। उन दिनां रावी नदी किले की दीवार से टकराकर बहती थी। घोड़ा पानी से सुरखित बाहर आ गया। भाई विधिचन्द घोड़ा लेकर गुरूचरणों में अमृतसर पहुंचा।

सभी विधिचन्द की इस सफलता पर प्रसन्न हुए किन्तु घोड़ा बीमार रहने लगा। इस पर गुरूदेव जी ने विधिचन्द से कहा - आपका कार्य अभी अधूरा है क्योंकि यह घोड़ा अपने साथी के बिना अस्वस्थ रहता है। अतः आप पुनः कष्ट करें और दूसरा घोड़ा भी लेकर आयें।

विधिचन्द जी आज्ञा अनुसार पुनः लाहौर पहुंचे। इस बार उन्होंने ज्योतिष विज्ञान के ज्ञाता के रूप में शाही किले के सामने अपनी दुकान सजा ली और लगे लोगों का भविष्य पढ़ने। एक दिन उनके पास दरोगा भी आ पहुँचा। उसने भी अपना हाथ दिखाया, बस फिर क्या था, भाई विधिचन्द जी उसे बनताने लगे कि तुम्हारी कोई चोरी हुई है, शायद कोई घरेलु पशु रहा है ? यह सुनना था कि दरोगा को उन पर विश्वास हो गया, वह इठ करने लगा कि मैं मुँह माँगा धन दूँगा यदि इस विषय में मुझे विस्तार से जानकारी उपलब्ध करवा दें। इस पर ज्योतिषि रूप में भाई विधिचन्द जी कहने लगे कि अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए उसे वह स्थान और वहाँ के वातावरण का अध्ययन करना होगा तभी वह ठीक से चोर के विषय में ज्योतिष के आँकड़ों की गणना प्राप्त कर सकेगा। दरोगा तुरन्त उनको अस्तबल में ले आया। ज्योतिषि रूप में विधिचन्द जी ने सभी स्थानों को ध्यान से देखा और सूंघा, फिर कहा यहाँ उसके साथ का एक घोड़ा और भी है शायद यही है। उन्होंने दूसरे घोड़े को पहचान कर बताया और फिर कहा - आप के घोड़े की चोरी अर्ध रात्रि को हुई है। अतः उसी परिस्थितियों में अनुमान लगाये जा सकेंगे। इस प्रकार दरोगा उनकी चाल में फंस गया, वह अर्धरात्रि की प्रतीक्षा करने लगे। अर्धरात्रि के समय विधिचन्द जी ने बहुत ही सहज अभिनय करते हुए कहा - आप सब उसी प्रकार का वातावरण तैयार करें, मैं ठीक से अनुभव लगाता हूँ, जब सब अपने अपने कमरों में सो गये तो विधिचन्द जी ने दरोगा से कहा - कृपया आप इस घोड़े पर काठी लगवाए, मैं इस पर बैठकर और इसे घुमा फिरा कर अन्तिम निर्णय पर जल्दी ही पहुँच जाऊँगा। ऐसा ही किया गया, तभी विधिचन्द जी ने घोड़े की सवारी की और उसे खूब घुमाया फिराया। अकस्मात् वह दरोगा को बताने लगे कि पहले आपका घासिया नौकर घोड़े को अमृतसर श्री हरिगोविन्द जी के पास ले गया है और अब वही घासियां दोबारा ज्योतिषि के रूप में इसे वहीं ले जा रहा है और उन्होंने किले की दीवार फांदकर रावी नदी में घोड़े सहित छलांग लगा दी। वह इस युक्ति से दूसरा घोड़ा भी गुरू चरणों में लाने में सफल हो गये।

घोड़ा तो अमृतसर पहुंच गया परन्तु विविधचन्द जी ने गुरूदेव को सतर्क किया कि सम्भव है, हमारे उपर मुगल सेना आक्रमण कर दे।

गुरूदेव जी का शाही सेना से तृत्तीय युद्ध

काबुल नगर की संगत से बलपूर्वक हथियाए गये घोड़े शाही अस्तबल लाहौर के किले में से एक एक करके युक्ति से गुरू का परम सेवक विधिचन्द लेकर गुरूदेव के चरणों में उपस्थित हुआ और उसने गुरूदेव को बताया कि इस बार उसने आते समय सरकारी अधिकारियों को सूचित कर दिया है कि वह घोड़े कहाँ ले जा रहा है। इस पर गुरूदेव ने अनुमान लगा लिया कि अब एक और युद्ध की सम्भावना बन गई है। अतः उन्होंने समय रहते तैयारियां प्रारम्भ कर दी।

जब लाहौर के किलेदार ने स्थानीय राज्यपाल (सूबेदार) को सूचित किया कि श्री हरिगोविन्द जी ने वे दोनों घोड़े युक्ति से प्राप्त कर लिये हैं तो वह विवेक खो बैठा, उसे ऐसा अहसास हुआ कि किसी बड़ी शक्ति ने प्रशासन को चुनौती दी हो। वैसे तो घोड़ों की वापसी से बात समाप्त हो जानी चाहिए थी किन्तु सत्ता के अभिमान में सूबेदार ने गुरूदेव की शक्ति को क्षीण करने की योजना बना कर, उन पर विशाल सैन्य बल से आक्रमण करने के लिए अपने वरिष्ठ सेना अधिकारी लल्ला बेग के नेतृत्त्व में बीस हजार जवान भेजे।

श्री गुरू हरिगोविन्द साहब जी उन दिनों प्रचार अभियान के अन्तर्गत मालवा क्षेत्रा के काँगड़ा गाँव में पड़ाव डाले हुए थे। लल्ला बेग के आने की सूचना पाते ही गुरूदेव ने वहाँ के जागीरदार रायजोध के सुझाव पर नथाणों गाँव चले गये। यह स्थान सामरिक दृष्टि से अति उत्तम था। यहाँ एक जलाशय था, जिस पर गुरूदेव ने कब्जा कर लिया। दूर दूर तक उबड़ खाबड़ क्षेत्रा तथा घनी जँगली झाड़ियों के अतिरिक्त कोई बस्ती न थी इस समय गुरूदेव के पास लगभग तीन हजार अनुयायीयों की सेना थी, जैसे ही युद्ध का बिगुल व नगाड़ा बजाया गया, संदेश पाते ही कई अन्य श्रद्धालु सिख घरेलु शस्त्रा लेकर जल्दी ही गुरूदेव के समक्ष उपस्थित हुए। सभी को धर्म युद्ध में मन मिटने का चाव था।

लाहौर से लल्ला बेग सेना लेकर लम्बी दूरी तय करता हुआ और गुरूदेव को खोजता हुआ, कुछ दिनों में इस जँगली क्षेत्रा में पहुंच गया। उसने आते ही हसन अली को सूचनाएं एकत्रित करने के लिए गुप्तचर के रूप में गुरूदेव के शिविर में भेज दिया। किन्तु स्थानीय जनता से भिन्न दिखने पर

जल्दी ही उसे दबोच लिया गया और उससे ही उलटे शाही सेना की गतिविधि की सूचनाएं प्राप्त कर ली गई। उसने बताया कि शाही सेना ऐश्वर्य की आदि है, वह इस पठारी क्षेत्रा में बिना सुविधाओं के लड़ नहीं सकती, उन के पास अब रसद पानी की भारी कमी है। वे तो केवल संख्या के बल पर युद्ध जीतना चाहते हैं जब कि युद्ध में दृढ़ता और विश्वास चाहिए।

लल्ला बेग और उसकी सेना रास्ते भर अपनी मश्कों से शराब सेवन करती चली आ रही थी, जब गुरूदेव के शिविर के निकट पहुँचे तो उन को पानी की कमी का अहसास हुआ, किन्तु पानी तो गुरूदेव के कब्जे में था। लल्ला बेग पानी की खोज में भटकने लगा। तभी घात लगा कर बैठे गुरू के योद्धाओं ने उन्हें घेर लिया और गोली बारी में भारी क्षति पहुँचाई। अब शाही सैन्य बल के पास केवल छप्पड़ों (तालाबों) का गंदा पानी ही था, जिस के बल पर उन्हें युद्ध लड़ना था। युद्ध से पहले ही बहुत से सैनिक भोजन के अभाव व गंदे पानी के कारण अमाशय (अपच) रोग से पीड़ित हो गये। उपयुक्त समय देखकर गुरूदेव के योद्धाओं ने गुरू आज्ञा प्राप्त कर शत्रु सेना पर धावा बोल दिया। दूसरी तरफ शाही सेना इस के लिए तैयार न थी। वे लम्बी यात्राा की थकान महसूस कर रहे थे। जल्दी ही घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। शाही सेना को इस की आशा नहीं थी, वे सोच रहे थे कि विशाल सैन्य बल को देखते ही शत्रु भाग जाएगा किन्तु उन्हें सब कुछ विपरीत दिखाई देने लगा। जिस कारण वे जल्दी ही साहस खो बैठे और इधर उधर झाड़ियों की आड़ में छिपने लगे। गुरूदेव के समर्पित जांबांजों ने शाही सेना को खदेड़ दिया। शाही सेना को पीछे हटता देखकर लल्ला बेग को आशंका हुई कि कहीं सेना भागने न लग जाए। उसने सेना का नेतृत्त्व स्वयँ सम्भाला और शाही सेना को ललकारने लगा। किन्तु सब कुछ व्यर्थ था, शाही सेना मनोबल खो चुकी थी। जबकि शाही सेना गुरूदेव के जवानों से पाँच गुणा अधिक थी। इस स्थिति का लाभ उठाते हुए गुरूदेव के योद्धाओं ने रातभर युद्ध जारी रखा, परिणामस्वरूप सूर्य उदय होने पर चारों ओर शाही सेना के शव ही शव दिखाई दे रहे थे। लल्ला बेग यह भयभीत दृश्य देखकर मानसिक सन्तुलन खो बैठा। वह आक्रोश में अपने सैनिकों को धिक्कारते हुए आगे बढ़ने को कहता, किन्तु उसी की सभी चेष्टाएं निष्फल हो रही थी। उसके सैनिक केवल अपने प्राणों की रक्षा हेतु लड़ रहे थे। वह गुरूदेव के जवानों से लोहा लेने की स्थिति में थे ही नहीं इस पर लल्ला बेग ने अपने बचे हुए अधिकारियों को एकत्रित कर एक साथ गुरूदेव पर धावा बोलने को कहा - ऐसा ही किया गया। उधर गुरूदेव और उनके योद्धा इस मुठभेड़ के लिए तैयार थे। एक बार फिर युद्ध पूर्ण रूप से घमासान रूप ले गया। दोनों तरफ से रणबांके विजय अथवा मृत्यु के लिए जूझ रहे थे। गुरूदेव स्वयं रणक्षेत्रा में अपने योद्धाओं का मनोबल बढ़ा रहे थे। इस मृत्यु के तांडव नृत्य में योद्धा खून की होली खेल रहे थे कि तभी लल्ला बेग ने गुरूदेव को आमने सामने होकर युद्ध करने को कहा - गुरू देवतो ऐसा चाहते ही थे, उन्होंने तुरन्त चुनौती स्वीकार कर ली। गुरूदेव ने अपनी मर्यादा अनुसार लल्ला बेग से कहा - लो तुम्हीं पहले वार कर के देख लो कहीं कोई मन में हसरत न रह जाए कि गुरू को मारने के लिए मौका ही नहीं मिला। फिर क्या था ? लल्ला बेग ने पूर्ण तैयारी से गुरूदेव पर तलवार से वार किया किन्तु गुरूदेव पैंतरा बदल कर वार झेल गये। अब गुरूदेव ने पूर्ण विधिपूर्वक वार किया, जिसके परिणाम स्वरूप लल्लाबेग के दो टुकड़े हो गये और वह वहीं ढ़ेर हो गया।

लल्लाबेग मारा गया है - यह सुनते ही शत्रु सेना भाग खड़ी हुई। इस प्रकार यह युद्ध गुरूदेव के पक्ष में हो गया और शाही सेना पराजय का मुँह देखकर लौट गई।

बाबा श्री चन्द जी से भेंट

श्री गुरू हरिगोविन्द जी दूसरे युद्ध में विजयी होने के पश्चात् प्रचार दौरे के अन्तर्गत विचरण कर रहे थे तो उन्हें बताया गया कि निकट ही बाठ नामक ग्राम हैं, यहाँ श्री गुरू नानक देव जी के बड़े सुपुत्रा श्री चन्द जी निवास करते हैं आप जी के दर्शन करने के विचार से उनके यहाँ पहुँचे। उस समय आप के दो बड़े बेटे गुरूदित जी तथा सुरजमल आप के साथ ही थे। बाबा श्री चन्द जी की आयु उन दिनों १३८ वर्ष की थी। श्री चन्द जी, गुरूदेव के बेटों को देखकर अति प्रसन्न हुए, आप जी ने गुरूदेव से प्रश्न किया, आप के कितने पुत्रा हैं तो गुरूदेव ने उत्तर दिया, पाँच थे, किन्तु एक का देहान्त हो गया है। इस पर श्रीचन्द जी कहने लगे कि इन में से हमारे को भी कोई मिल सकता है ? गुरूदेव ने उत्तर दिया, सभी आप के ही हैं, जिसे चाहे ले सकते हैं गुरदिता जी की रूपरेखा कुछ कुछ श्री गुरूनानक देव जी से मिलती थी। अतःश्रीचन्द जी ने कहा - कृपया आप अपना बड़ा सुपुत्रा हमें दे दीजिए। गुरूदेव ने तुरन्तसहमति दे दी।

बाबा श्री चन्द जी ने साहबजादे गुरूदिता को सामने से उठाकर अपने आसन पर बिठा दिया और कुछ उदासी सम्प्रदाय के चिन्ह, खड़ाएं बैरागनी, भगवे कपड़े इत्यादि उन्हें दिये और कहा यह सुपुत्रा आज से हमारा उत्तराधिकारी हुआ। गुरू नानक की गददी तो पहले ही आप के पास है, हमारे पास जो फकीरी थी, वह भी आप ही को सौंप दी है। उन दिनों श्री चन्द जी के चार प्रमुख प्रचार केन्द्र थे। उनको घूणियां कहा जाता था। साध ू सन्यासीयों द्वारा भक्ति करते समय तापने वाली आग जिसमें से सदैव धुंआ निकलता रहता है अर्थात घूणियाँ, इन चार घूणियों के प्रमुखों के नाम इस प्रकार हैं - बाबा अलमसत जी, दूसरे बाबा बालू हसणा जी, तीसरे बाबा गोइंदा जी तथा चौथे बाबा फूल जी।

बुढ़ण शाह

श्री हरिगाविन्द साहब जी ने अपने बड़े बेटे (बाबा) गुरूदित जी को आदेश दिया कि आप हिमालय पर्वत की तराई के क्षेत्रा में एक नगर बसाओ और वहीं आगामी जीवन में निवास स्थल बनाओ। गुरूदिता जी ने पिता श्री गुरू हरिगोविन्द जी से आग्रह किया कि कृपया आप उस विशेष स्थान का चुनाव कर के दें इस प्रकार पिता पुत्रा पर्वतीय क्षेत्रा की तलहटी में विचरण करने लगे। इस बीच गुरूदेव जी ने बेटे गुरूदिता जी को बताया कि हम

पहले जामे (शरीर) में जब गुरू नानक देव रूप हो यहाँ प्रचार के लिए विचरण कर रहे थे तो उन दिनों यहाँ एक गड़रिया बुडण शाह निवास करता था, जिसे इबादत करने की तीव्र इच्छा थी, इस लिए वह दीर्घ आयु की अभिलाषा रखता था, जब हम से उसने यह मनोकामना पूर्ण करने की मंशा प्रकट की तो हमनेउसे कहा - ऐसा ही होगा और हम आप द्वारा भेंट किया गया दूध का कटोरा छेवे जामे (शरीर) में स्वीकार करेंगे, जब आप के श्वासों की पूंजी समाप्त होने वाली होगी। अतः अब वही समय आ गया है, हमें बुडण शाह फकीर से भेंट कर उसका कटोरा दूध का स्वीकार करना है। गुरूदेव ने एक पर्वतीय ग्राम में बुडण शाह को खोज लिया। बुडण शाह ने आपका हार्दिक स्वागत किया, वह कहने लगा कि यह तो ठीक है, आप गुरू नानक के उत्तराधिकारी हैं, वही सब तेजस्व है किन्तु कृपया आप मुझे शाही ठाठ-बाठ से हट कर उसी रूप में दर्शन दें। तब गुरूदेव जी ने बाबा गुरूदिता जी को आदेश दिया कि वह तुरन्त गुरू नानक देव जी का ध्यान करके स्नान करके लौट आवें, गुरूदिता ने ऐसा ही किया। जब लौट कर बुडण शाह के सम्मुख हुए तो बुडण शाह को वह गुरू नानक रूप दृष्टिगोचर होने लगे। वह उनके चरणों में गिर पड़ा और दूध का कटोरा भेंट करते हुए बोला, कृपया आप मेरा आवागमन का चक्कर समाप्त कर दे गुरू नानक रूप में बाबा गुरूदिता जी ने कहा - आपकी इच्छा पूर्ण हुई। इस पर योग बल से बुडण शाह ने शरीर त्याग दिया। गुरूदेव ने उसका अन्तिम सँस्कार करके उसकी वहीं कब्र बना दी।

(गुरू) हरि राय जी का प्रकाश (जन्म)

श्री गुरू हरिगोविन्द साहब जी को कीरतपुर से संदेश मिला कि आपके यहाँ पौत्रा ने जन्म लिया है। वह करतारपुर से कीरतपुर पहुंचे। आपने जब माता राजकौर की गोदी से पौत्रा को अपनी गोदी में लिया तो बालक के लक्ष्ण देखकर आप ने कहा - यह बालक हमारे ताऊ पृथीचन्द जैसे लक्ष्णों का स्वामी होगा। इस को माया के अतिरिक्त कुछ नहीं सुझेगा। आपने बालक का नाम दिया धीरमल, आप का विचार था कि शायद नाम का प्रभाव उसकी चँचल प्रवृत्ति पर कुछ अंकुश रख सकेगा

समय के अन्तराल में जब चार वर्षों बाद आपको सूचना मिली कि आप के यहाँ दूसरे पौत्रा ने जन्म लिया है तो आप पुनः कीरतपुर पधारे। इस बार आपने जब नवजात शिशु को गोदी में लिया तो आप बालक के दर्शनों के पश्चात् बहुत प्रसन्न हुए। आपने कहा - यह बालक क्या है स्वयं हरि मानव रूप धारण कर पृथ्वी पर आ विराजे है आपने बालक को प्रणाम किया और बालक को नाम दिया हरिराय। आपने बेटे गरूदिता जी को आदेश दिया कि बालक के पालन पोषण पर विशेष ध्यान दिया जाये।

करतारपुर में शाही सेना से अन्तिम युद्ध के पश्चात् आप कीरतपुर ही निवास करने लगे। इस बीच अकस्मात् जब श्री गुरूदिता जी का निध
ान हो गया तो आप ने हरिाय जी को अपनी देखरेखमें लिया। उस समय उनकी आयु केवल ४ वर्ष की थी।

शाही सेना के साथ चौथा और अन्तिम युद्ध

पिछले अध्यायों में आप पैंदे खान का विवरण पढ़ चुके हैं कि श्री गुरू हरिगोवन्दि साहब जी ने इस अनाथ किशोर को अपनी सेना में भर्ती कर लिया था। उसनेअमृतसर के प्रथम युद्ध में बहुत वीरता दिखाई, किन्तु इसे अपने बाहुबल पर बहुत अभिमान हो गया था। उस का विचार था कि उसी के कारण गुरूदेव इस प्रथम युद्ध में विजीय हुए हैं।

जैसे ही गुरूदेव को उसकी अभिमानपूर्ण बातों का पता चला तो उन्होंने उस की शादी करवा कर उसे उसके गाँव कुछ समय के लिए विश्राम करने भेज दिया। दूसरे और तीसरे युद्ध के समय इसे जानबूझ कर नहीं बुलाया गया क्योंकि गुरूदेव अभिमान के बड़े विरोधी थे। समय के अन्तराल में उस के घर दो बच्चों ने जन्म लिया, पहली लड़की दूसरा बच्चा लड़का था। लड़की को जब गुरूदेव की गोदी में डाला गया तो उन्होंने भविष्यवाणी की कि यह कन्या पिता तथा मुगल सत्ता पर भारी रहेगी। समय के अन्तराल में जब लड़की युवती हुई तो उस का विवाह पैंदे खान ने उसमान खान नामक युवक से कर दिया। जिस के पिता लाहौर में प्रशासनिक अधिकारी थे। उसमान खान अपने ससुराल में अधिक सुख-सुविधाओं के कारण घर जंवाई बनकर रहने लगा। उसमान खान लालची प्रवृत्ति का व्यक्ति था, वह ससुर के माल को हथियाने में ही अपनी योग्यता समझता था।

एक बार वैशाखी के पर्व पर चतुरसैन नामक श्रद्धालु ने गुरूदेव को कुछ बहुमूल्य उपहार भेंट किये। इनमें ऐ सक सुन्दर घोड़ा, एक बाज़ पक्षी तथा एक सैनिक वर्दी इसके अतिरिक्त अन्य दुर्लभ वस्तुएं थी। गुरू परम्परा अनुसार इन वस्तुओं को गुरूदेव सुयोग्य व्यक्तियों में बांट देते थे। इस बार आपने घोड़ा तथा सैनिक वर्दी पैंदे खान को दे दी और आदेश दिया, इसे पहन कर दरबार में आया करो। बाज़ को गुरूदेव ने अपने बड़े सुपुत्रा श्री गुरूदिता जी को सौंप दिया। पैंदे खान ने जब वह विशेष वर्दी धारण की तो उसका सौन्दर्य देखते ही बनता था। गुरूदेव उस की अनुपम छटा पर रीझ उठे और पुनः आदेश दिया कि इसे धारण करके ही दरबार में आया करो। किन्तु हुआ इस के उलट। पैंदे खान के दामाद उस्मान खान ने यह दोनों उपहार उससे हथिया लिये। इस पर दामाद ससुर में बहुत कहा-सुनी हुई परन्तु पैंदेखान की पत्नी और बेटी ने उस्मान खान का साथ देकर उसे बढ़ावा दिया , जिस कारण पैंदे खान बेवश होकर रह गया। गुरूदेव ने उसे कई बार वर्दी में न आने का कारण पूछा, किन्तु वह हर बार कोई न कोई बहाना

बना कर बात को टाल देता था। एक दिन कुछ सिक्खों ने वह वर्दी उस के दामाद को पहन कर शिकार पर जाते देखा। इस बीच उस के दामाद ने श्री गुरूदिता जी का बाज़ पकड़ कर घर के एक कमरे में छिपा कर रख लिया। यह बात गुरूदेव जी को बताई गई, उन्होंने तुरन्त पैंदे खान को बुला लिया और उसे आदेश दिया कि उस्मान खान से बाज वापिस लेकर आये। उसने उस्मान खान को बहुत मनाने की कोशिश की किन्तु वह नहीं माना, उल्टा ससुर पर दबाव डाला कि वह झूठ बोल दे कि बाज मेरे पास नहीं है। पैंदे खान पर इस बात के लिए उसकी पत्नी तथा बेटी ने भी बहुत दबाव डाला कि वह किसी तरह झूठ बोलकर उस्मान खान को बाज की चोरी से बचा ले। मरता क्या ना करता की कहावत अनुसार पैंदे खान ने गुरू दरबार में झूठी कसम खाई कि बाज उस्मान खान के पास नहीं है। इस पर श्री गुरूदिता जी के साथियों ने उस्मान खान के घर की तलाशी ली और बाज बरामद कर लिया। अब पैंदे खान को बहुत नीचा देखना पड़ा। वह अर्श से फर्श पर गिर पड़ा था, उसे मुँह छिपाने के लिए स्थान नहीं मिल रहा था। उसे पश्चाताप में क्षमा माँगनी चाहिए थी, किन्तु वह क्रोध में गुरूदेव से उलझ पड़ा। इस पर सिक्खों ने उसे धक्के मारकर वहाँ से भगा दिया।

भारी अपमान के कारण पैंदे खान भ्रष्ट आचरण पर उतर आया, उसे उसके दामाद उस्मान खान ने गुमराह किया कि हमें गुरू जी से अपमान का बदला लेना चाहिए, वे दोनों योजना बना कर जालन्धर के सूबेदार (राज्यपाल) कुतुब खान से मिले कि हमारी सहायता की जाये, हम गुरू घर के भेदी हैं, हमारे ही बल पर गुरू ने युद्धों में विजय प्राप्त की है। यदि हमें पर्याप्त सेना मिल जाये तो हम गुरू जी को जीत कर शाही सेना की पराजय का बदला चुका सकते हैं जालन्धर के सूबेदार ने उन्हें सुझाव दिया कि इस समय बादशाह शाहजहाँ लाहौर आया हुआ है, तुम वहाँ जाकर अपनी फरियाद करो और उन्हें अपनी योजना बताओ, यदि वह तुम्हारी योजना पर स्वीकृति प्रदान करते हैं तो मैं तुम्हें हर सम्भव सहायता करूँगा।

पैंदे खान और उस्मान खान लाहौर पहुँचे किन्तु उन्हें बादशाह तक पहुँचने ही नहीं दिया गया, इस बीच उनकी करतूतों का कच्चा चिट्ठा बादशाह के निकटवर्ती मंत्री वजीर खान को मालूम हो गया। वह गुरूजनों पर बहुत श्रद्धा रखता था, उसने बादशाह शाहजहाँ को बता दिया कि कुछ नमक हराम आप से मिलना चाहते हैं, जिन्हें गुरू हरिगोविन्द जी ने अपने बच्चोंकी तरह पाला है और वह गददारी करके शाही फौज को जितवाना चाहते हैं यह सुनकर बादशाह सतर्क हुआ, तभी सूचना मिली कि सम्राट का बड़ा बेटा दारा शिकोह सख्त बीमार है। अतः बादशाह को जल्दी ही दिल्ली लौटना पड़ गया, उसका सहायक मंत्री वजीर खान भी उसके साथ दिल्ली लौट गया। उनके दिल्ली लौटने पर पैंदे खान और उसके दामाद को एक शुभ अवसर मिल गया। वे दोनों स्थानीय प्रशासक को मिले। उसने इस विषय पर अपने सेनानायकों की सभा बुलाई, उस में प्रत्येक विषयों पर गम्भीरता से विचार किया गया। अन्त में निर्णय यह हुआ कि यदि जालन्धर इत्यादि सूबों से सेना मिला ली जाये तो संयुक्त सैन्यबल, घर के भेदी की सहायता से विजय प्राप्त रि सकते है। इस अभियान का नेतृत्त्व काले खान ने सम्भाला। यह सेनापति पहले मारे गये मुख्लिस खान का भाई था। संयुक्त सेना ने करतारपुर को घेरनेकी गुप्त योजना बनाई। किन्तु समय रहते लाहौर के सिक्खों ने गुरूदेव को पहले सूचित कर दिया।

युद्ध की सम्भावना को देखते हुए गुरूदेव जी ने भी राय जोध इत्यादि अनुयायियों को संदेश भेजकर समय रहते उपस्थित होने का ओदश दिया। काले खान तथा उसके सहायक सेनानायकों ने जिसमें जालन्धर का कुतुब खान भी सम्मिलित था, योजना अनुसार करतारपुर को घेरना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु गुरूदेव का सैन्य बल इन चालों के लिए सतर्क था, उन्होंने तुरन्त घेराबन्दी को छिन्न-भिन्न कर दिया। अब युद्ध आमने सामने का प्रारम्भ हो गया। पूरे दिन भर घमासान युद्ध होता रहा किन्तु कोई परिणाम न निकला। अगले दिन एक सैनिक टुकड़ी का नायक अनवर खान जो कि पिछले युद्ध में मारे गये लल्लाबेग का भाई था। गुरूदेव के सेना नायक को द्वंद्व युद्ध के लिए चुनौती देने लगा। भाई विधिचन्द ने उसकी ललकार को स्वीकार कर लिया। इस युद्ध में भले ही विधिचन्द घायल हो गये किन्तु उन्होंने अनवर खान को मृत्यु शैया पर सुला दिया। सेनानायक अनवर खान की मृत्यु के तत्काल ही शत्रु सेना ने पूरे जोश से भरपूर आक्रमण कर दिया। इस भारी आक्रमण को विफल करते हुए गुरूदेव की एक सैन्य टुकड़ी के नायक भाई लखू जी शहीदी प्राप्त कर गये। इस पर भाई रायजोध जी व जीत मल इत्यादि नायकों ने शाही सेना को आगे बढ़ने से रोकने के लिए अपने सैनिक दीवार की तरह खड़े कर दिये। युद्ध में मृत्यु का तांडव नृत्य हो रहा था, भूमि रक्तसे लाल हो गई थी। सभी दिशाओं से मारो-मारो की भयंकर ध्वनि गूंज रही थी। इन परिस्थितियों में गुरूदेव के बड़े बेटे श्री गुरूदिता जी व छोटे बेटे त्यागमल जी, (जो बाद में तेग बहादुर के नाम से सँसार में प्रसिद्ध हुए) अपने अस्त्रा शस्त्रा लेकर रणक्षेत्रा में जूझने पहुँच गये। इस आमनेसामने के घमासान युद्ध में सिक्ख नायकों के हाथों काले खान और कुतुब खान दोनों मारे गये। श्री गुरूदिता जी व त्यागमल जी ने अपने बाहुबल के कई करतब दिखाये, वे जहाँ निकल जाते, शत्राुओं के शवों के ढ़ेर लग जाते, इसी बीच पैंदे खान घोड़ा भगाकर गुरूदेव के सम्मुख आ खड़ा हुआ और गुरूदेव को चुनौती देने लगा। इस पर गुरूदेव ने उसे कहा - आओ, बरखुदार हम तुम्हारी ही प्रतीक्षाकर रहे थे। लो पहले तुम्हीं अपने मन का चाव पूरा कर लो और करो वार, तभी पैंदे खान ने दांव लगा कर पूरे जोश में गुरूदेव पर तलवार से वार किया, किन्तु गुरूदेव ने पैंतरा बदल कर वार से बचाव कर लिया। तब भी गुरूदेव शांत बने रहे, उन्होंने फिर पैंदे खान को एक अवसर और प्रदान किया और कहा - लो कहीं तुम्हारे मन में यह लालसा न रह जाये कि अगर एक और मौका मिल जाता तो मैं सफल हो जाता ? अच्छा एक और वार कर लो। अकृतघ्न पैंदे खान को तब भी शर्म नहीं आई, उसने पूरी सावधानी से गुरूदेव पर वार किया, जिसे गुरूदेव ने अपनी ढ़ाल पर रोक लिया। किन्तु पैंदे खान की तलवार दो टुकड़े हो गई। अब पैंदेखान ने गुरूदेव के घोड़े की लगाम पकड़ ली और दूसरे हाथ से उनके पेट में खंजर से वार करने लगा, तब तक गुरूदेव ने उसे मुँह पर लात मारी, वह पटकी खा कर नीचे गिर गया, किन्तु जल्दी ही सम्भल कर उनके घोड़े के नीचे घुस गया। उसने अपना पुराना दांव चला, वह घोड़े को उठाकर पलट देना चाहता था किन्तु गुरूदेव ने एक ओर से उसके सिर पर पूरे बल के साथ ढ़ाल

दे मारी, जिससे उसका सिर फट गया। वह भूमि पर सो गया। गुरूदेव घोड़े से उतरे और उसके मुँह पर ढ़ाल से छाया करते हुए कहने लगे - पैंदे खान तुम्हारा अन्तिम समय है लो कलमा पढ़ लो पैंदे खान की मूर्छा टूटी तो उसने कहा - गुरूदेव मुझे क्षमा करना, मेरा कलमा तुम्हारी कृपा दृष्टि ही है। इस प्रकार वह प्राण त्याग गया। पैंदेखान के मरते ही बची हई शाही सेना भाग गई। गुरूदेव के शिविर में विजय के उपलक्ष्य में हर्षनाद किया गया।

गुरूदेव जी ने तब बिना भेदभाव के सभी घायलों की सेवा का कार्य अपने हाथों लिया और मृत सैनिकों को उनकी परम्परा अनुसार अन्तिम सँस्कार कर दिया। तद्पश्चात् आपने अपने विजयी तथा मृत अनुयायियों को प्रोत्साहित करने के लिए सभी को बड़े बड़े सम्मान से अलंकृत किया और बहुत से उपहार बाँटे। आपने अपने छोटे पुत्रा त्याग मल की वीरता की खूब प्रशंसा की और उनको नया नाम दिया। आपने कहा - तू त्याग मल नहीं तेग बहादुर है। युद्ध के समय उनकी आयु केवल १४ वर्ष की थी। यह युद्ध गुरूदेव ने सन् १६३४ में जीता था। इस युद्ध की समाप्ति के कुछ समय पश्चात् आपने करतारपुर से कीरतपुर निवास कर लिया।

गुरू सुपुत्रा श्री गुरूदिता जी का निधन

बाबा गुरूदिता जी ने पिता श्री गुरूहरिगोविन्द जी के आदेश अनुसार उनके बताये गये स्थल पर एक सुन्दर नगर का निर्माणप्रारम्भ कर दिया और इस नगर का नाम गुरूआज्ञा से कीरतपुर रखा। जल्दी ही यह नगर विकास की ओर बढ़ने लगा क्योंकि दूर दूर से यहाँ पर संगत का आवागमन होने लगा। यहीं आपने एक सुन्दर भव्य गृह बनवाया, जिसका नाम शीश महल रखा। कुछ समय पश्चात् आप के यहाँ क्रमशः दो पुत्रों ने जन्म लिया। धीरमल व (गुरू) हरिराय जी, जब यह नगर विकास की चरम सीमा में पहुँचा तो श्री गुरू हरिगोवन्द साहब भी स्थानान्तरित होकर चिरस्थाई निवास यहीं रखने लगे।

एक दिन बाबा गुरूदिता जी अपने कुछ मित्रों के संग शिकार खेलने गये हुए थे कि जंगल में भूल से एक भूरी गाय को हिरन समझ उनके एक साथी ने तीर मार दिया, जिससे वह मर गई। उसी समय उस गाय का मालिक आ पहुँचा और वह गौ हत्या की दुहाई देने लगा। इस पर बाबा गुरूदिता जी ने उसे बहुत समझाया, भइया इस का मुँह माँगे दाम ले लो, किन्तु वह नहीं माना। उस समय बाबा गुरूदिता जी दुविधा में उलझ गये। स्थानीय लोगों ने गो हत्या का आरोप लगाया। इस पर बाबा गुरूदिता जी ने आत्म शक्ति का प्रयोग कर, गाय के ऊपर सत्य नाम वाहे गुरू कह कर जल के छीटें दे दिये। गाय जीवित हो गई और घास चरने लगी। यह घटना जँगल में आग की तरह लोगों की चर्चा का विषय बन गई।

जब यह चर्चा गुरूदेव के कानों में पहुँची तो वह बहुत नाराज हुए, उन्होंने तुरन्त गुरूदिता जी को बुलाकर कहा - तुम अब परम पिता परमेश्वर के प्रतिद्वन्द्वी बन गये हो। वह जिसको मृत्यु देता है, उसे तुमने जीवन देने का ठेका ले लिया है ? बस यह डांट सुनते ही गुरूदिता जी लौट आये और एक एकान्त स्थान पर चादर तानकर सो गये और आत्म बल से शरीर त्याग दिया।

नरेश हरिसैन

श्री गुरू हरिगोविन्द के दरबार कीरतपुर में हिमाचल प्रदेश के जिला मण्डी क्षेत्रा का नरेश हरिसैन गुरू स्तुति सुनकर दर्शनों को आया। गुरू दरबार में उस समय कीर्तनी जत्था शब्द गायन कर रहा था -

लेखु न मिटई हे सखी जो लिखिआ करतारि।
आपे कारणु जिनि किआ करि किरपा पगु धरि पृष्ठ ९७३

नरेश ने गुरू वाणी की इन पंक्तियों पर विशेष ध्यान दिया और वह विचरने लगा। विद्याता द्वारा लिखे गये लेख हमारे जीवन की अटल सच्चाई है तो फिर महापुरूषों के दर्शनों के लिए आना अथवा शुभ कर्म करने से क्या लाभ ? यह शंका मन में लेकर वह बहुतगम्भीर हो गया। जल्दी ही उसकी प्रसन्नता निराशा में बदल गई। गुरूदेव ने इस को अपनी पैनी दृष्टि से अनुभव किया। नरेश ने गुरूदेव से वापिस जाने की आज्ञा माँगी। इस पर गुरूदेव जी ने उसे कहा - आप कुछ दिन हमारे पास रहें। हम कल शिकार खेलने चलेगें तो आप भी हमारे साथ चलें। आप का मनोरंजन हो जाएगा।

गुरूदेव के आग्रह पर नरेश ने लौटने का कार्यक्रम स्थगित कर दिया। रात्रि में नरेश को स्वप्न दिखाई दिया कि वह एक साधारण गाँव में खेतिहर मज़दूर है, उसका एक परिवार है, गरीबी के कारण गुजर-बसर में बहुत कठिनाइयाँ आड़े आती हैं, उस वर्ष वर्षा न होने के कारण सभी क्षेत्रों में अकाल पड़ गया है। अनाज की भारी कमी के कारण लोग भूखे मर रहे हैं। वह स्वयं भूख मिटाने के लिए जँगली फलों के एक पेड़ पर चढ़करउसके फल (पीलू) खा रहा है और ऊपर से बच्चों को तोड़ कर गिरा रहा है कि अकस्मात् एक कमजोर डाली पर पाँव पड़ने पर वह टूट जाती है और वह खेतिहर मज़दूर ऊपर से नीचे गिरते ही मर जाता है।

यह भयंकर दृश्य देख नरेश का स्वप्न टूट जाता है और उसे वास्तव में, गिरने की चोट की पीड़ा का अनुभव होता है। वह जल्दी से बिस्तर छोड़कर सतर्क होता है किन्तु वह सब तो स्वप्न था। फिर यह पीड़ा क्यों ? प्रातःकाल दाँत स्वच्छ करते समय दाँतों में जंगली फलों के टुकड़े पाये गये, जब कि नरेश ने कभी जँगली फल खाए ही नहीं थे। नरेश स्वप्न को लेकर आश्चर्य में था, किन्तु वह शांत बना रहा। निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार नरेश गुरूदेव जी के साथ शिकार खेलने वनों में निकल गये। गुरूदेव जी ने आदेश दिया कि जिसके सामने शिकार पड़ जाये, वही शिकार का पीछा करे। नरेश को एक मृग दिखाई दिया। उसने मृग का पीछा किया किन्तु मृग बच निकलने मे सफल हो गया परन्तु नरेश शिकारी दल से बहुत दूर निकल गया। उसे प्यास लगी, निकट ही उसे एक ग्राम दिखाई दिया, जब वह उस गाँव के निकट पहुँचा तो उसे सभी कुछ जाना पहचाना दिखाई देने लगा, तभी कुछ बच्चे खेलते हुए वहाँ पहुँचे और उन्होंने नरेश को अपने पिता रूप मे पहचान लिया। नरेश ने भी अनुभव किया कि बच्चे गलत नहीं कह रहे थे क्योंकि वह उन्हें अपने स्वप्नवाले बच्चों के रूप में पहचान रहा था। नरेश इसी दुविधा में था कि गाँव के लोग इक्ट्ठे हो गये और उन्होंने उसे घर चलने का आग्रह किया। इतने में नरेश को खोजते हुए गुरूदेव व अन्य साथी वहाँ पहुँच गये। गाँव के लोग नरेश हरिसैन को अपने गाँव का निवासी बता रहे थे, जबकि गुरूदेव ने उन्हें समझाया कि वह व्यक्ति तो मण्डी क्षेत्रा का नरेश है। गुरूदेव की बात पर भरोसा करके स्थानीय निवासियों ने नरेश को जाने दिया।

रास्ते में गुरूदेव जी ने नरेश से पूछा कि आपने तो अपने परिवार को पहचान लिया होगा ? नरेश ने चकित स्वर में कहा - हां, गुरूदेव ! वह कल रात वाले स्वप्न अनुसार मेरा ही परिवार था, कृपया मुझे यह पहली सुलझा कर बतायें। इस पर गुरूदेव जी ने उसे बताया कि जब आप यहाँ दरबार में पहुँचे तो आपने जो वाणी सुनी, उस क अनुसार आपके हृदय में शंका उत्पन्न हुई कि जब विधाता का लिखा मिट नहीं सकता तो संगत अथवा महापुरूषों के दर्शनों की आवश्यकता ही क्या है ? यह सब आप की शंका का उत्तर था। आप के भाग्य में विधाता ने एक खेतिहर मज़दूर का जीवन लिखा था जो कि सत्संग में आने से स्वप्न में पूर्ण हो गया। नरेश इस वृत्तन्त को सुनकर सन्तुष्ट होकर अपने नगर लौट गया।

भाई भैरों जी

श्री गुरू हरिगोविन्द साहब अपने जीवन के अन्तिम दिनों में कीरतपुर क्षेत्रा में रहने लगे थे। यह नगर आप के बड़े सुपुत्रा श्री गुरूदिता जी ने बसाया था। इस क्षेत्रा का नरेश ताराचन्द था। जिसे गुरूदेव ने जहाँगीर की कैद से ग्वालियर के किले से स्वतन्त्रा करवाया था। स्थानीय लोग गुरूदेव का बहुत सम्मान करते थे और गुरू नानक देव द्वारा चलाये पंथ पर अथाह श्रद्धा रखते थे। किन्तु कुछ रूढ़िवादी लोगों ने एक छोटी सी पहाड़ी के शिखर पर एक पत्थर को तराश कर एक मूर्ति का निर्माण किया हुआ था, जिसे वे नयना देव कह कर सम्बोधन करते थे। उनके भोलेपन से वहाँ का स्थानीय पुजारी खूब लाभ उठाता था और जन साधारण का शौषण करता था। जब यह बात वहाँ के एक स्थानीय सिख को मालूम हुई, जिस का नाम भैरों था, ने अनपढ़ तथा साधारण भक्तों को बहुत समझाने का प्रयास किया कि हमें विवेक बुद्धि से काम लेना चाहिए, व्यर्थ में अपना धन, समय और शक्ति नष्ट नहीं करनी चाहिए। प्रभु तो रोम रोम में रमा राम है, यदि हम निराकार की उपासना करें तो इन आडम्बरों से बचा जा सकता है और शान्ति प्राप्ति का भी अद्भुत आभाष होगा। इस बात को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने भक्त कबीर जी की रचना सुनाई, जिस में भक्त जी मालनी को सम्बोधन करके समझा रहे हैं कि तू भूल मैं है, सुन ! तुमने जीवन को निरजीव को भेंट किया है, इसलिए कल्याण सम्भव नहीं क्योंकि फूल में जीवन है और पत्थर की मूर्ति निरजीव।

पाती तोरै मालिनी, पाती पाती जीउ।
जिसु पाहन कउ पाती तोरै, सो पाहन निरजीउ।।
भूली मालनी है एउ।
सतिगुरू जागता है देउ।

किन्तु लोग कहाँ मानने वाले थे वह वही भेड़चाल ही चले जा रहे थे। फिर एक दिन भाई भैरों जी को एक युक्ति सूझी, उन्होंने लोगों के गलत विश्वासों को समाप्त करने के लिए मूर्ति नयना देव की नाक तोड़ डाली। इस पर मूर्ति पूजक बहुत छटपटाये किन्तु वे भाई भैरों जी का सामना नहीं कर पाये क्योंकि उनकी बात में तथ्य था और वह हर दृष्टि से शक्तिशाली थे। अतः मूर्ति पूजन समुदाय ने स्थानीय नरेश राजा तारा चन्द के पास भाई भैरों जी की शिकायत की। नरेश ताराचन्द ने बहुत सोच विचार के पश्चात् इस दुखान्त को श्री गुरू हरिगोविन्द जी के सम्मुख रखा। उन्होंने तुरन्त भाई भैरों जी को बुलाया। भाई भैरों जी शायद इस समय की प्रतीक्षा में बैठे थे। उन्होंने अपने ऊपर लगे आरोप के उत्तर में कहा - आप को पहले देवी से पूछना चाहिए कि उस का नाक किसने तोड़ा है ? यह सुनते ही समस्त दरबार में हँसी फैल गई। ताराचन्द ने उत्तर दिया - देवी से पूछा नहीं जा सकता क्योंकि वह बोलती नहीं, वह तो पत्थर की बेजान एक कलाकृति है। इस पर भाई भैरों जी ने कहा - बस मैं भी तो यह कहना चाहता था कि जो मूर्ति बेजान है, उसके आगे शीश झुकाने से क्या लाभ, वह तो अपनी सुरक्षा भी नहीं कर सकती। अतः वहाँ जो आडम्बर रचा जाता है, वह सब कर्मकाण्ड है। इन से कुछ प्राप्त होने वाला नहीं, केवल पुजारी लोगों की जीविका का साधन मात्रा है। आप द्वारा फल-फूल, दूध, मिठाइयां इत्यादि सब व्यर्थ चले जाते हैं। क्यों न हम विवेक बुद्धि से विचार करके उस पूर्ण सच्चिदानंद की उपासना करें जो सर्वत्रा विद्यमान हैं।

भाई साहब की यह सूक्ष्म विचारधारा सुनकर सभी निरूत्तर होकर शान्त हो गये।

पौत्रा हरिराय जी को गुरयाई सौंपना

श्री गुरू हरिगोविन्द साहब के पाँच पुत्रा थे किन्तु दो पुत्राों ने स्वेच्छा से योग बल द्वारा शरीर त्याग दिया था। आप के सबसे छोटे पुत्रा त्यागमल, जिस का नाम बदल कर आपने तेग बहादुर रखा था, बहुत ही योग्य थे किन्तु आप तो विद्याता की इच्छा को मद्देनजर रख के अपने छोटे पौत्रा हरिराय को बहुत प्यार करते और उनके प्रशिक्षण पर विशेष बल दे रहे थे। आप की दृष्टि में वही सर्वगुण सम्पन्न थे और वही गुरू नानक की गद्दी के उत्तराधिकारी बनने की योग्यता रखते थे। अतः आपने एक दिन यह निर्णय समस्त संगत के सामने रख दिया। संगत में से बहुत से निकटवर्ती ने कहा – आप तो बिल्कुल स्वस्थ हैं, फिर यह निर्णय कैसा ? किन्तु गुरूदेव जी ने उत्तर दिया – प्रभु इच्छा अनुसार वह समय आ गया है, जब हमने इस मानव शरीर को त्याग कर प्रभु चरणों में विलीन होना है। आपने निकट के क्षेत्रा में बसे सभी अनुयायियों को संदेश भेज दिया कि हमने अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति करनी है, अतः समय अनुसार संगत इक्ट्ठी हो ? संगत के एकत्रित होने पर तीन दिन हरियश में कीर्तन होता रहा, समाप्ति पर आपने पौत्रा हरिराय जी को अपने सिहांसन पर विराजमान किया और उनकी परिक्रमा की, इसके साथ ही एक थाल में गुरू परम्परा अनुसार कुछ सामग्री उन को भेंट की। बाबा बुड्ढा जी के सुपुत्रा श्री भाना जी को आदेश दिया कि वह हरिराय जी को विधिवत् केसर का तिलक लगाएं। जैसे ही सभी गुरू प्रथा सम्पन्न हुई, श्री गुरू हरिगोविन्द जी ने अपने पौत्रा श्री हरिराय को दण्ड्वत प्रणाम किया और अपनी दिव्य ज्योति उनको समर्पित कर दी। तद्पश्चात् समस्त संगत को आदेश दिया कि वे भी उनका अनुसरण करते हुए श्री हरिराय जी को गुरू नानक देव जी का उत्तराधिकारी मान कर नतमस्तक हों।

आपने स्वयं एकान्तवास में निवास करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिन पश्चात् मार्च १६४४ ईस्वी को आपने शरीर त्याग दिया और प्रभु चरणों में विलीन हो गये।

नाम	:	हरगोबिन्द
जन्म	:	सम्वत् 1652 ;अंग्रेजी वर्ष 1595द्ध गुरु की वड़ाली, अमृतसर
पिता	:	गुरु अरजनदेव जी महाराज
माता	:	माता गंगा जी
पत्नी	:	माता नानकी जी
पुत्रा	:	1. गुरदित्ता जी, 2. अनीराय जी, 3. अटलराय जी, 4. सूरजमल जी, 5. त्यागमल जी ;तेगबहादुर जीद्ध
पुत्राी	:	बीबी वीरों जी
गुरुपद	:	1606 से 1644 ईस्वी
सृजना	:	श्री अकाल तख्त साहिब जी
ज्योति जोत	:	वर्ष 1644 ईस्वी कीरतपुर साहिब

वार 24, पऊड़ी 21 (भाई गुरदास जी)
गुरू गोविंदु, गोविंदु गुरू
हरिगोविंदु सदा विगसंदा।

गुरू हरगोबिन्द साहिब जी महाराज एक राष्ट्रवादी विचारधारा का नेतृत्व करने वाले महापुरुष थे। एवं 'बंदी छोड़ पातशाह' के नाम से भी जाने जाते थे। गुरू हरगोबिन्द साहिब जी महाराज का जन्म अमृतसर में 'गुरू की वडाली' नाम गांव में हर्ष वदी 7वीं (21 हर्ष), सम्वत 1652 (19 जून, 1595) को हुआ था। वो गुरू अरजन साहिब एवं माता गंगा जी के इकलौते पुत्र थे। वे बहुत ही सुन्दर थे। उनका विवाह माता नानकी जी के साथ हुआ था। उनकी एक पुत्री बीबी वीरों थी एवं पांच पुत्र– 1. अनी राय जी, 2. बाबा गुरदित्त जी, 3. सूरज मल जी, 4. अटल राय जी और 5. गुरू तेग बहादुर जी थे। इनमें से चार पुत्रों की उनके जीवनकाल में ही मृत्यु हो गयी थी एवं पांचवें पुत्र गुरू तेग बहादुर जी 1664 में नौवें नानक के रूप में स्थापित हुए।

गुरू हरगोबिन्द साहिब जी 1606 में 11 वर्ष की आयु में गुरू अरजन साहिब के उत्तराधिकारी के रूप में स्थापित हुए। गुरू अरजन देव जी की महान शहादत के बाद कालखण्ड सिखों के लिए एक महत्वपूर्ण था। अब सिखों ने शक्तिशाली मुगल साम्राज्य के विरूद्ध पलटवार करने के बारे में गहन सोच विचार करना शुरू कर दिया था। क्योंकि यह उस समय की आवश्यकता थी। अब सिख गुरू साहिबान जी ने आध्यात्मिक एवं राजनैतिक, दोनों रास्तों को अपनाना प्रारम्भ कर दिया था।

गुरू हरगोबिन्द साहिब जी ने दो कृपाणों को धारण किया, जिसमें से एक कृपाण आध्यात्मिक शक्ति ''पीरी'' एवं एक कृपाण सैन्य शक्ति ''मीरी'' की परिचायक थी। सिखों को सुझाव देते हुए गुरू साहिब ने कई पत्रों में सैन्य प्रशिक्षण एवं नियुद्ध कला में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। कुछ ऐतिहासिक दस्तावेज बताते हैं कि गुरू साहिब ने 700 घुड़सवार एवं 60 तोपचीयों को भी नियुक्त किया था। गुरू साहिब पठान लड़ाकुओं की भी एक सेना बनाई थी। जिसका प्रमुख पैंडा खान पठान को नियुक्त किया गया था। घुड़सवारी, शिकार, कुश्ती एवं कई अन्य खेलों का परिचय कराया गया। इसी के साथ–साथ सिखों को वीरतापूर्ण कार्यों को करने के लिए तथा उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए गुरू साहिब जी ने ढाड़ियों से वीर रस की वारें गवांकर सिखों में वीरता का संचार किया। इस बावत अब्दुल एवं नथा मल को जिम्मेदारी सौंपी गयी थी। गुरू साहिब खुद भी एक स्वस्थ शरीर एवं मस्तिष्क के मालिक थे। उन्होने खुद भी घुड़सवारी, कुश्ती एवं शिकार आदि में भाग लिया था।

एक समयोपरान्त गुरू साहिब ने अमृतसर के चारों तरफ किलेबन्दी कर एक दीवार खड़ी कर दी एवं अमृतसर के बाहरी हिस्से में एक छोटे से किले 'लोहगढ' का निर्माण भी करवाया। गुरू साहिब ने श्री अकाल तख्त साहिब, जो अकाल बंगा के नाम से भी जाना जाता है। 1609 में श्री हरमन्दिर साहिब के सम्मुख स्थापित किया। यह स्थान बहुत जल्द सत्संग, प्रार्थना और राजनैतिक हुक्मनामों के जारी होने का स्थान बन गया। इस स्थान पर बैठकर गुरू साहिब सिखों को उपदेश भी दिया करते थे एवं सिखों द्वारा झेली जाने वाली कठिनाइयों पर भी विचार विमर्श होता था। इस प्रकार सिखों को अपनी समस्यायें स्वयं ही सुलझाने के लिए प्रेरित किया गया। अकाल तख्त के खुले प्रांगण में खेलों एवं नियुद्ध कला का प्रदर्शन भी किया जाता था। इससे सिख राष्ट्रीय भाव का संचार हुआ। गुरु के सिख गुरू साहिब को 'सच्चा पातशाह' कहते थे एवं उनके द्वारा लिये गये निर्णयों का पालन निष्ठापूर्वक करते थे।

इस नीति का बादशाह जहांगीर ने विरोध किया एवं गुरू साहिब को ग्वालियर के किले में बन्दी बनाने का आदेश दिया। जबकि गुरू साहिब को गिरफ्तार करने के पीछे बहुत से कारण थे, परन्तु उन में प्रमुख, गुरू अरजन साहिब की शहादत के जिम्मेदार सिख धर्म के दुश्मनों द्वारा बादशाह जहांगीर को गलत ढंग से सचेत (गुरू साहिब एवं सिखों द्वारा सैन्य तैयारियां के सम्बन्ध में) करना मुख्य कारण था। बादशाह जहांगीर का आदेश मिलते ही सिख धर्म की प्रमुख हस्तियों – माता गंगा जी, बाबा बुड्ढा जी, भाई गुरदास जी, भाई जेठा जी और भाई सालो जी आदि लोगों से

सलाह मश्विरा करने के बाद गुरू साहिब दिल्ली के लिए रवाना हो गये। गुरू साहिब बादशाह जहांगीर के सामने प्रस्तुत हुए एवं बादशाह जहांगीर द्वारा उनका इज्जत एवं आदर से सत्कार किया गया। गुरू साहिब एवं बादशाह जहांगीर के बीच राष्ट्र, राष्ट्रवाद, जेहादवाद, धर्म परिवर्तन, सिख धर्म एवं सिख सिद्धान्तों आदि बिन्दुओं को लेकर वाद विवाद हुआ। जिससे बादशाह जहांगीर परेशान हो गया। उसकी जेहादी मुहिम अप्रभावित हो रही थी। एवं उसने गुरू साहिब जी को ग्वालियर के किले में बन्दी बनने का आदेश दे दिया। गुरू साहिब को तीन वर्षो – 1609 से 1612 तक इस किले में बन्दी बनाकर रखा गया।

गुरू हरगोबिन्द जी ने स्वयं उनको छोड़े जाने के समय बादशाह जहांगीर से उन 52 हिन्दू राजाओं को भी मुक्त करने के लिए दृढ़ता से कहा। गुरू साहिब ने हिन्दू राजाओं के हक के लिए लड़ाई लड़ी। बादशाह जहांगीर को गुरू साहिब के कहे को मानना पड़ा एवं 1612 को हिन्दू राजाओं भी छोड़ देना पड़ा। इस घटना के पश्चात गुरू साहिब को ''बंदी छोड़ बाबा'' के रूप में भी जाना जाता है। गुरू साहिब दीवाली के मौके पर अमृतसर पहुंचे। यह सिखों के लिए एक बहुत बड़ा मौका था। यह भी कहा जाता है कि बाबा बुड्ढा जी ने इस अवसर पर पूरे अमृतसर को दीयों से रोशन कर दिया था। सिखों ने इस अवसर को बहुत जोशो खरोश से मनाया। तब से सिख दीपावली को ''बाबा बन्दी छोड दिवस'' के रूप में मनाते है।

गुरू साहिब की रिहाई के तुरंत बाद क्रोधित सिखों ने चन्दू शाह (गुरू अरजन साहिब जी की शहादत के लिए जिम्मेदार) को गिरफ्तार कर दिया। उन लोगों ने चन्दू शाह का जलूस लाहौर की सड़कों में निकाला। चंदू शाह के उपर पागल कुत्ते की तरह पत्थर फेंके गये एवं अन्त में उसे मौत के घाट उतार दिया गया। ऐतिहासिक दस्तावेजों के अनुसार चन्दू शाह को मौत दी गयी एवं उसके शरीर को रावी नदी में फेंक दिया गया।

गुरू साहिब ने मेहरबान (पृथी चन्द का पुत्र) को सिखों एवं सिख धर्म के विरूद्ध षड़यंत्र रचने से रोकने का भरसक प्रयास किया।।

गुरू साहिब ने सिख धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए बहुत से प्रवास किये। उन्होने अमृतसर से कार्य का प्रारम्भ किया। संपूर्ण भारत में हजारों मीलों की यात्रा की। उन्होने पंजाब में करतारपुर का प्रवास किया और दोआब को अपना मुख्य केन्द्र बनाया। उन्होने आस–पास के और गांवों – बाड़ा पीर, मुकेरिया आदि का दौरा भी किया एवं 1621 में हरगोविन्दपुर शहर (शहर का असली नाम हरगोबिन्दुपुरा था) की नींव रखी। गुरू साहिब ने पंजाब के मालावा क्षेत्र का प्रवास भी किया जहां के गरीब, दबे कुचले लोग अंधविश्वासों एवं ''सखी सरवर'' से प्रभावित थे। गुरू साहिब ने दारौली, मेहराज, डामरू, डबवाली, सिद्धवान, सिद्धार, लोपो, जीरा, कटरा और गिलां जैसे गांवों का प्रवास भी किया है। दूसरे शब्दों में संपूर्ण मालवा क्षेत्र ने सिख धर्म को गले से लगाया और सिख संगत को बढ़ाने में बहुत बड़ा योगदान दिया।

गुरू हरगोबिन्द साहिब, गुरू नानक जी द्वारा स्थापित एक पुराने सिख धर्म स्थल नानकमत्ता (अब उधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड में स्थित) गये। गुरू साहिब नानकमत्ता कुछ संत सिपाहियों के साथ गये। गुरू साहिब दरौली होते हुए अमृतसर पहुंचे। गुरू साहिब ने श्रीनगर (गढ़वाल) के शांत एवं सौहार्दपूर्ण माहौल में मराठा संत राम दास समर्थ जी महाराज के साथ भी धार्मिक एवं आध्यात्मिक वार्तालाप किया।

गुरू साहिब ने 1620 में कश्मीर का प्रवास किया।

कश्मीर प्रवास गुरू साहिब के सिख धर्म के प्रचार का ही एक भाग था। गुरू हरगोबिन्द साहिब ने एक सेवा दास को सिख उपदेश देने के लिए स्थापित किया। उन्होने और उनकी माता भाग भारी ने बड़े उत्साह एवं भक्ति से गुरू साहिब की सेवा की। गुरू साहिब ने सिख भक्तों एवं उपदेशक कट्टू शाह (मुस्लिम से सिख बने) से एक छोटी सी मुलाकात की। गुरू साहिब ने सियालकोट, वजीराबाद, मीरपुर, भीमबर रेहरान, बारामूला, उड़ी और मुज्जफराबाद का प्रवास भी किया। उन्होने सिख धर्म के उपदेश देने के लिए भाई गढिया जी को नियुक्त किया। गुरू साहिब के भक्तिभावयुक्त उपदेशों से प्रभावित होकर कश्मीर के कई हिन्दू एवं मुस्लिमों ने सिख धर्म को

अपनाया। उन्होने मण्डीयाली गांव के दया राम जी एवं भागन जी की पुत्री बीबी नानकी जी से विवाह किया।

गुरू साहिब बारामूला होते हुए वापिस अमृतसर आये एवं फिर गुजरात के प्रवास के निकल गये जहां उनकी मुलाकात संत शाह दौला से हुई जिन्होने गुरू साहिब के आध्यात्मिक व्यक्तित्व एवं शानदार जीवनशैली को खूब सराहा। गुरू साहिब लाहौर में राय–भोए–दी–तलवण्डी (गुरू नानक साहिब जी की जन्मभूमि), मांगे और मदाई भी गये। उन्होने कुरूक्षेत्र (अब हरियाणा में स्थित) का प्रवास भी किया एवं वहां एक सिख धर्म केन्द्र की स्थापना भी की।

गुरू साहिब ने अपने जीवन का अंतिम दशक (1635 से 1644) कीरतपुर साहिब में बिताया, जो कि बाबा हरदित्ता जी द्वारा बसाये गये पहाड़ी राज्य हदूर (नालागढ) में स्थित है। गुरू साहिब ने अपना अधिकतम समय सिखों को संगठित करने उपदेश केन्द्रों को नई रोशनी देने में व्यतीत किया। बाबा गुरदित्ता जी को धार्मिक मसलों का प्रमुख बनाया गया और क्षेत्रों के अनुसार चार प्रमुख उपदेशकों – अलमस्त जी, फौल जी, गौण्डा जी एवं बाबा हंसा जी को नियुक्त किया गया। गुरू साहिब जी ने उदासी पंथ के प्रमुख बाबा श्री चंद जी से मित्रता स्थापित की। गुरू साहिब जी के धार्मिक प्रवासों एवं उनके द्वारा दिये गये उपदेशों ने सिख धर्म को भारत में एक नयी उंचाई प्रदान की।

वहीं दूसरी ओर गुरू साहिब ने सिखों के सैन्य प्रशिक्षण का कार्य जारी रखा। भारत पर मुस्लिमों के आक्रमण के पश्चात भारत के इतिहास में पहली बार गुरू हरगोबिन्द साहिब जी की कमान के तले सिख सशस्त्र प्रतिरोध के लिए खड़े हुए। मुस्लिमों के अन्याय एवं जुल्मों का विरोध किया गया। गुरू साहिब ने एक शांतिप्रिय पंथ को रणवीर सामाजिक समुदाय में परिवर्तित किया। जो अपने हितों की रक्षा के कृपणों से भी नहीं चूके क्योंकि यह समय की मांग थी।

बादशाह जहांगीर की मृत्यु के पश्चात नये युवा बादशाह शाहजहां की नीतियों में महत्वपूर्ण बदलाव देखने को मिला। बादशाह ने मुस्लिम धर्म से सिख धर्म में परिवर्तन पर कड़ी नजर रखी। उसने सभी निर्माणाधीन गुरूद्वारों एवं मंदिरों को ध्वस्त कराने के आदेश दे दिये। डब्बी बाबर, लाहौर में स्थित गुरू अरजन साहिब जी की बाउली को अपवित्र कर मस्जिद में परिवर्तित कर दिया गया। (बाद में महाराजा रणजीत सिंह ने बाउली को दोबारा खुदवाया एवं स्थापित किया। 1947 में दोबारा कट्टरपंथी मुस्लिमों द्वारा उस बाउली को तोड़ दिया गया।)

1629 में मुख्लिस खान को लाहौर का गवर्नर नियुक्त किया गया। वो एवं काजी रूस्तम खान बहुत गहरे मित्र थे। एक ऐतिहासिक आलेख के अनुसार कौलां नामक एक हिन्दु स्त्री को बचपन में ही काजी रूस्तम खान ने जबरदस्ती खरीद कर अपने पास रखा। उसे एक दास की तरह उपयोग किया जाता था। जब वो जवान हुई तो वो सांई मियां मीर से गुरु के शबद् सुनकर प्रभाव में आई। उसने गुरू साहिब की धार्मिक संगतों में भाग लेना भी शुरू कर दिया एवं गुरू साहिब की एक सच्ची भक्त बन गयी।

कौलां जी के इस रूख को देखते हुए काजी रूस्तम खान और कड़ा रूख अपनाने लगा। काजी एक कट्टर मुस्लिम पंथी होते हुए कौलां जी के सिख धर्म के प्रति भक्ति को कैसे सहन कर सकता था। काजी के इस कड़े रूख से परेशान होकर कौलां जी ने मियां मीर जी से मदद मांगी, जिन्होने अपने एक विद्यार्थी अबदुल्लाह (अब्दुल यार खान) को कौलां जी को सकुशल अमृतसर छोड़ने का जिम्मा दिया। जहां गुरू साहिब द्वारा दयाभाव से स्वागत किया गया। एक सरोवर के किनारे उन्हें रहने के लिए एक अलग स्थान भी मुहैया कराया गया। गुरु हरगोबिन्द जी ने इस सरोवर को भव्य रूप देकर इसका नाम कौलसर रखा। वो गुरू साहिब की पवित्र शिष्या थी एवं सिख धर्म की कट्टर अनुयायी थी। कौलां जी ने अपने निवास स्थान पर धार्मिक सभाओं का आयोजन कर उसमें सिख धर्म और गुरबानी का प्रचार–प्रसार किया। बहुत ही जल्द सिख लोगों में वो मशहूर हो गयी। इस प्रकार वो सिख लोगों के प्रेम की पात्र बनी एवं कौलां जी के नाम से जानी जाने लगी। उन्होने सिख धर्म की सेवा में समर्पित रहते हुए 4 जुलाई 1629 को करतारपुर (जालंधर) में अपनी अंतिम सांसे ली।

जब जहांगीर की मृत्यु के पश्चात शाहजहां गद्दी पर बैठा तो काजी रूस्तम खान ने नये बादशाह को, जो कि पहले से ही कट्टर मुस्लिम पंथियों के बहकावे में आया था, गुरू साहिब की शिकायत की। उसने शिकायत को स्वीकार किया एवं अपने पिता गुरू साहिब के प्रति जहांगीर द्वारा बनायी गयी नीतियों में फेर बदल किया। इस घटनाक्रम से उत्पन्न परिस्थितियां स्वाभाविक थी। गुरू साहिब ने शाहजहां के काल में पांच युद्ध लड़े एवं सभी गुरू साहिब द्वारा जीते गये। 1621 में श्री हरगोबिन्दपुर के निकट रोहिला में एक छोटा सा युद्ध लड़ा गया। वह जालन्धर के फौजदार एवं हरगोबिन्द साहिब जी के बीच पहला सशस्त्र युद्ध था।

नये शहर हरगोबिन्दपुर के निकट जमीन के मालिकाना हक को लेकर भगवान दास, जो कि एक खत्री किराड़ था, ने कुछ भाड़े के गुंडों की मदद से सिखों को जबरदस्ती वहां से हटा दिया, जो कि नये शहर (हरगोबिन्दपुर) के निर्माण कार्य में लगे हुए थे। इस छोटे से झगड़े में भगवान दास एवं उसके सभी गुण्डे मारे गये। इस घटना के बाद भगवान दास के पुत्र रतन चन्द एवं चन्दू मल के पुत्र करम चन्द ने जालंधर के फौजदार को इस घटना का हवाला देकर गुरू साहिब के विरूद्ध बहकाया। जालंधर के फौजदार अब्दुला खान ने 10 हजार सैनिकों की एक टुकड़ी को युद्ध के लिए रवाना किया। उनको ब्यास नदी के किनारे रोहिला घाट में भक्तियुक्त सिख संत सैनिकों का सामना करना पड़ा। मुगल सेना को पराजय का मूंह देखना पड़ा परन्तु दोनों तरफ जान एवं माल की बहुत हानि हुई। रतन चन्द, करम चन्द के अलावा जालन्धर का फौजदार अब्दुल्ला खान, उसके दोनों पुत्र एवं पांच कमाण्डर इस युद्ध में मारे गये। गुरू साहिब ने भी मथुर भट्ट (बाबा भीका जी के पुत्र), भाई नानू जी, भाई सकतु जी, भाई जट्टू जी, भाई पिराना जी, भाई पारस राम जी, भाई जगननाथ जी और भाई कल्याण जी जैसे महान सिख सैनिकों को इस युद्ध में खोया।

अप्रैल 1634 में गुरू साहिब एवं मुगल सेना के बीच द्वितीय एवं बहुत महत्वपूर्ण युद्ध हुआ। यह प्रकरण उस समय भ्गुरू हुआ जब सिखों द्वारा बादशाह शाहजहां जो कि उस समय अमृतसर के निकट गुमटाला के क्षेत्र में शिकार पर आये हुए थे, के शाही शिकारी बाज को पकड़ा गया। इससे दोनों पक्षों के बीच एक छोटा सा झगड़ा हुआ। गुरू साहिब इस झगड़े में स्वयं शामिल नही थे।

इस झगड़े ने बादशाह शाहजहां को क्रोधित किया। उसने मुखलिसखान को 7000 सैनिकों के साथ गुरू हरगोबिन्द साहिब जी को सबक सिखाने के लिए भेजा। लोहगढ के किले पर आक्रमण किया गया। सिख जबकि संख्या में कम थे उन्होने इसका कड़ा प्रतिरोध किया। गुरू साहिब एवं उनके परिवार को जल्द से जल्द बीबी वीरों जी (गुरू हरगोबिन्द साहिब जी की पुत्री) के विवाह के लिए झब्बल जाना पड़ा। युद्ध के प्रथम दिन आक्रमणकारियों की स्थिति मजबूत थी। उन्होने गुरू घर की तमाम जायदाद को लूट लिया। दूसरे दिन सुबह सिखों ने अपनी शक्ति को संगठित कर सोयी हुई मुगल सेना पर जोरदार हमला बोला। मुखलिसखान और सभी बड़े कमाण्डर इस आक्रमण में मारे गये। गुरू साहिब को भारी जान एवं माल की हानि हुई। यह मुगलों एवं सिखों के बीच पहला युद्ध था।

इस युद्ध के बाद गुरू हरगोबिन्द साहिब जी भटिण्डा के अल्प रेगिस्तानी जगह की तरफ चले गये। (अमृतसर छोड़कर मालवा क्षेत्र की ओर जाते समय गुरू साहिब गुरू ग्रन्थ साहिब जी को अपने साथ ले गये एवंज ब उन्होने दारोली में कुछ समय तक विश्राम किया तो उन्होने गुरू ग्रन्थ साहिब को अपने परिवार के साथ करतारपुर भेज दिया।) इसके तुरंत बाद लाहौर में गुरू साहिब के दो भक्तों के दो घोड़ों के लाहौर के सुबेदार द्वारा छीन लिये जाने के कारण गुरू साहिब एवं सुबेदार के बीच झड़प हो गयी। इस घटना की जानकारी गुरू साहिब को दी गयी। यह दुस्साहसपूर्ण कृत्य मुगल शासन को खुली चुनौति के रूप में लिया गया। कमर बेग एवं लाला बेग की कमान में 22000 सैनिकों की एक टुकड़ी को लाखी जंगल की तरफ भेजा गया। गुरू हरगोबिन्द साहिब जी के पास केवल तीन से चार हजार योद्धा थे। राय जोध एवं कीरत भट्ट की कमान में सिख सेना ने एक तालाब के निकट अपना कैम्प लगाया। मेहराज एवं लाहिड़ा गांव के पास अवरोध लगाया गया। कुछ ऐतिहासिक दस्तावेजों के मुताबिक 16 दिसम्बर 1634 को सिखों द्वारा रात में किये गये गुरिला आक्रमण से मुगल सेना काफी हताहत हुई। सिखों ने दुश्मनों को

उखाड़ फेंका एवं युद्ध में पराजित किया। कीरत भट्ट एवं भाई जेठा जी समेत गुरू साहिब ने 1200 सिख योद्धाओं को इस युद्ध में खोया। दूसरी तरफ समीर बेग अपने दोनों पुत्रों शम्स बेग और कासिम बेग के साथ मारा गया। मुगल सेना मृत एवं घायल सैनिकों को छोड़कर लाहौर की तरफ भाग खड़ी हुई। सिखों ने भगोड़े मुगल सैनिकों को कोई नुकसान नही पहुंचाया। विजय के इस उपलक्ष्य में गुरू साहिब ने गुरूसर नामक एक तोप का निर्माण भी किया। नथने गांव के समीप गुरू साहिब का मुकाबला एक बार फिर मुगल सेना से हुआ और इस बार भी गुरू साहिब विजयी रहे।

इस विजय के बाद गुरू साहिब करतारपुर (जालंधर) में अपने योद्धाओं के साथ आराम करने गये। किसी छोटे से विवाद के कारण गुरू साहिब के बचपन के दोस्त पैंडा खान पठान ने गुरू साहिब को त्याग कर मुगल फौज में आ गया था। 26 अप्रैल 1635 को पैंडा खान पठान और काला खान (मुखलिस खान का भाई) ने शाही मुगल सेना के साथ मिलकर करतारपुर में गुरू साहिब पर आक्रमण कर दिया। केवल 5000 की मामूली सेना के साथ भी सिख सेना ने उनका वीरतापूर्वक मुकाबला किया। गुरू तेग बहादुर जी, बाबा गुरदित्त जी और भाई बिधी चन्द जी ने अदम्य साहस का मुजाहिरा किया। पैंदा खान और काला खान दोनों ही इस युद्ध में मारे गये। कई सिख योद्धा भी इस युद्ध में शहीद हुए।

करतारपुर के युद्ध के पश्चात गुरू साहिब कीरतपुर साहिब की तरफ चले गये, जहां पर राजा तारा चन्द (पहाड़ी राज्य का प्रमुख) का राज था। 29 अप्रैल 1635 को एक बार फिर अहमद खान की कमान में शाही सेना ने फगवाड़ा के निकट पलाही गांव में गुरू साहिब पर आक्रमण किया। इस युद्ध में गुरू साहिब की सेना को भारी क्षति उठानी पड़ी। भाई दासा जी एवं भाई सोहेला जी (बल्लु भट्ट के पुत्र एवं मुला भट्ट के पौत्र) ने इस युद्ध अपने जीवन का बलिदान दिया। सतलज को पार कर गुरू साहिब कीरतपुर साहिब पहुंचे जहां उन्होने एक और सिख धर्म स्थल एवं उपदेश केन्द्र का निर्माण किया। यहां पर गुरू साहिब अपने जीवन के अंतिम दस वर्ष बितायें एवं चैत सुदी 5 (छठा चैत सम्वत 1701) 28 फरवरी 1644 (किन्हीं और ऐतिहासिक दस्तावेजों के तहत 3 मार्च 1644) को अपनी अंतिम सांसे ली। गुरू साहिब ने ज्योति जोत समाने से पहले गुरू हर राय साहिब (बाबा गुरदित्ता जी के दूसरे पुत्र) को अपने उत्तराधिकारी एवं 'सप्तम् नानक' के रूप में स्थापित कर दिया था।